9.जे.ब.5 2074 Sowcarpet Chennai

नमो नमः श्री गुरुराम-जगच्चन्द्रसूरये ॥

classmate Date Page 1

# व्याप्ति पञ्चकम्

पं. श्री सच्चिदानंदजी मिश्र

न तावदव्यभिचरितत्वम्

अव्यभिचरितत्व व्याप्ति नहीं है। अर्थात् अव्यभिचरितत्व के पाँच अर्थ होते हैं, वे पाँचों व्याप्ति नहीं है।

तावद् - वाक्यालंकारे अर्थात् सुनने में अच्छा लगता है।

---

प्रथम लक्षण

साध्याभाववदवृत्तित्वम्

यह व्याप्ति नहीं है।

पूर्वपक्ष प्राचीन मत:- साध्याभाववत: अवृत्तं इति साध्याभाववदवृत्तं,
तद् यत्र अस्ति इति साध्याभाववदवृत्ति,
तस्य भाव: साध्याभाववदवृत्तित्वम्।
(षष्ठी तत्पुरुष + मत्वर्थीय इन् प्रत्यय + भावे त्व)
अर्थात् साध्याभाव वाले अधिकरण से निरूपित वृत्तित्व का (हेतु में) असाभाव।

उत्तरपक्ष नव्य मत- 'न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तदर्थप्रतिपत्तिकरः
इस नियम का विरोध होने से यह उपर्युक्त अर्थ बराबर नहीं है।

'न कर्मधारयान्... प्रतिपत्तिकरः' = कर्मधारय समास के बाद मत्वर्थीय प्रत्यय करने से और बहुव्रीहि समास से यदि समान

अर्थ निकलता हो तो कर्मधारय + मत्वर्थीय प्रत्यय नहीं करना चाहिए।
उपर्युक्त अर्थ बहुव्रीहि समास से मिल सकता है, अतः प्राचीनों ने गौरव किया है।

पूर्वपक्ष हमने कर्मधारय किया ही नहीं है।
उत्तरपक्ष उपर्युक्त नियम में 'कर्मधारय' पद का अर्थ 'बहुव्रीहि से अन्य समास' करना क्योंकि बहुव्रीहि से अन्य सभी समासों में गौरव होता है।
यह हमने 'अगुणवत्त्वम्' ऐसे साधर्म्य के व्याख्यान के अवसर पर गुणप्रकाशरहस्य और दीधिति रहस्य में स्पष्ट किया है।

① न गुणः अगुणः + मतु + त्व (पूर्वपक्ष)
② गुणवत् ⇒ न गुणवत् + त्व (उत्तरपक्ष)

~~पूर्वपक्ष~~ प्र. दोनों में फर्क क्या हुआ, एक में समास के बाद मतु किया तो दूसरे में समास के पहले मतु किया?
उ. समास में शक्ति वैयाकरण मानते हैं।
नैयायिक नहीं मानते।

समास में शक्ति क्यों नहीं मानना —

| पद | शक्ति वैया. | नैया. |
|---|---|---|
| राज | ✓ | ✓ |
| पुरुष | ✓ | ✓ |
| राजपुरुष | ✓ | ✗ |
| सुन्दरराजपुरुष | ✓ | ✗ |

ऐसे समस्त पदों में शक्ति मानने से हर समास में अलग-अलग शक्ति मानना पड़ेगी, इससे आनन्त्य दोष।
नैयायिक समस्त पद में अवयव पदों की शक्ति ही मानते हैं।

इस तरह समस्त पद में शक्ति न होने से उसके बाद की प्रक्रिया का गौरव/लाघव देखना है।
① मत में समास के बाद दो प्रक्रिया है।
② मत में 'गुणवत्' पद शक्त पद है। उसके समास के बाद एक ही प्रक्रिया है। अतः लाघव है।

पूर्वपक्ष अव्ययीभाव समास के बाद प्रक्रिया करने से गौरव नहीं।
⇒ वृत्तेः अभावः अवृत्तिः, साध्याभाववतः अवृत्तिः, तत्त्वम्।

उत्तरपक्ष ① 'अव्ययीभाव... अव्युत्पन्नत्वात्' = अव्ययीसमास के उत्तरपद के अर्थ के साथ उस समास में अनिविष्ट (उस समास के बाहर रहे) पद का अन्वय नहीं होता।
e.g. भूतले उपकुम्भं ⇒ भूतलोपकुम्भं, यदि कोई ऐसा समास करना चाहे तो नहीं कर सकता क्योंकि इसका अर्थ होगा 'भूतल पर कुम्भ के समीप' इस अर्थ में भूतल (समास में अनिविष्ट पद) का अन्वय उपकुम्भं के उत्तरपदार्थ के साथ किया है। ऐसे ही भूतले अघटम्।
② 'यथा भूतले... अप्रतीतेः' ⇒ दूसरा कारण है कि समास अनुभव (प्रतीति) संगत होता है। यहाँ भूतले उपकुम्भं या भूतले अघटम् समास में भूतल पर रहे घटसामीप्य या घटाभाव की प्रतीति नहीं होती।

'एतेन ... अन्वयानुपपत्तेः' ⇒
इससे 'वृत्तेः अभावः अवृत्ति, साध्याभाववतः अवृत्तिं यत्र' ऐसे अव्ययीभाव के बाद बहुव्रीहि भी नहीं कर सकते क्योंकि उसका अर्थ होगा साध्याभाववाले की वृत्ति का अभाव, ऐसे साध्याभाववत् पद का वृत्ति पद में अन्वय नहीं हो सकता।

(3) 'अव्ययीभाव... असम्भवाच्च' ⇒ तीसरा कारण है अव्ययीभाव समास अव्यय होने के कारण उसके साथ अन्य समास नहीं हो सकता।

9. नञ्, उप, अधि वि. अव्ययों का समास तो होता ही है?
3. ऐसे कुछ अव्यय गणपाठ में गिने गए हैं जिनका समास होता है। उपर्युक्त 'अवृत्ति' उस गणपाठ में नहीं है।

(अब नव्यनैयायिक खुद का मत बताते हैं-)
'वस्तुतस्तु... इति फलितम्' ⇒ वस्तुतः यहाँ व्यधिकरण बहुव्रीहि समास किया गया है-

साध्याभाववतः न वृत्तिः यत्र इति साध्याभाववदवृत्ति
भावे त्व - साध्याभाववदवृत्तित्वम्।

यहाँ षष्ठी विभक्ति का 'निरूपितत्व' अर्थ है और इसका अन्वय वृत्ति में किया जाता है।
अतः लक्षण का अर्थ हुआ - साध्याभाव के अधिकरण से निरूपित वृत्ति का अभाव वाला होना = अव्यभिचरितत्व है।

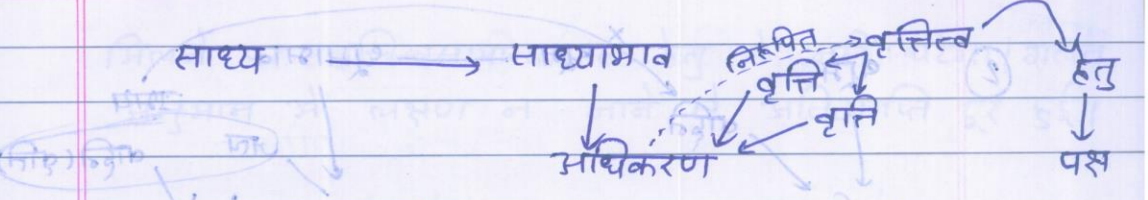


पूर्वपक्ष व्यधिकरणबहुव्रीहि समास सभी जगह करना ठीक नहीं है।

उत्तरपक्ष ने च व्यधिकरण... साधुत्वात् ⇒ जहाँ अन्य कोई रास्ता न हो, वहीं व्यधिकरणबहुव्रीहि किया जाता है।
यहाँ 'अयं हेतुः साध्याभाववद्वृत्तिः' इत्यादि अनुमान में व्यधिकरणबहुव्रीहि समास के बिना अन्य गति (रास्ते) का अभाव होने से यहाँ भी व्यधिकरणबहुव्रीहि करना ही ठीक है।

परिष्कार 1

लक्षण - साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव
↑ first परिष्कार

वृत्तित्व का अभाव कैसे लेना? वृत्तित्व-सामान्य का अभाव लेना।

पूर्वपक्ष ①

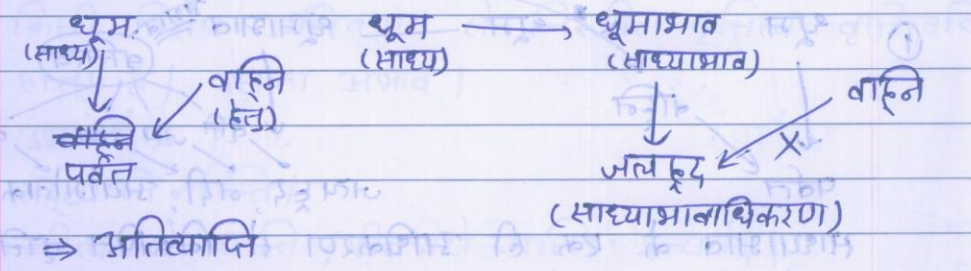


⇒ अतिव्याप्ति

②

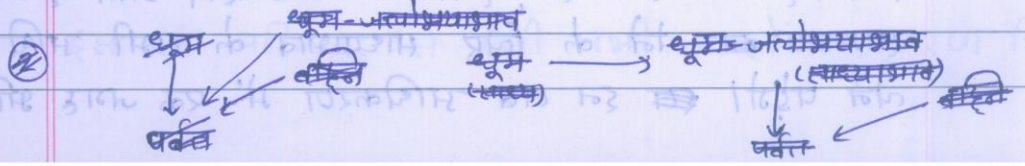

classmate
Date
Page

(2)

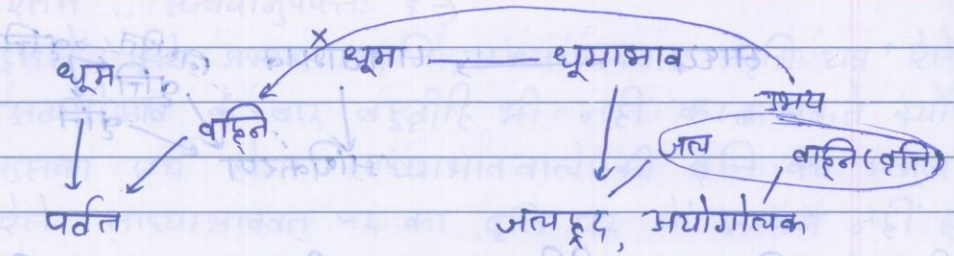


यहाँ अयोगोलक निरूपित वृत्तिता वह्नि में है किंतु जलह्रद-अयोगोलकादि साध्याभाव के सभी अधिकरण निरूपित वृत्तिता वह्नि में नहीं है। ~~वह्नि~~ में (जल + वह्नि वृत्तिता) का उभयाभाव है। अतः हेतु में साध्याभावाधिकरणनिरूपित अभाव मिलने से लक्षण चला गया ⇒ अतिव्याप्ति।

उत्तरपक्ष 'साध्याभावाधिकरण... नातिव्याप्तिः' ⇒ यहाँ साध्याभावाधिकरण से निरूपित जो वृत्तित्वाभाव लेना है, वह वृत्तित्वसामान्य का अभाव लेना है। अर्थात् सामान्य से सभी वृत्तित्व का अभाव लेना। यदि एक भी जगह वृत्तित्व ~~आ~~ आया तो लक्षण नहीं घटेगा।

(1)

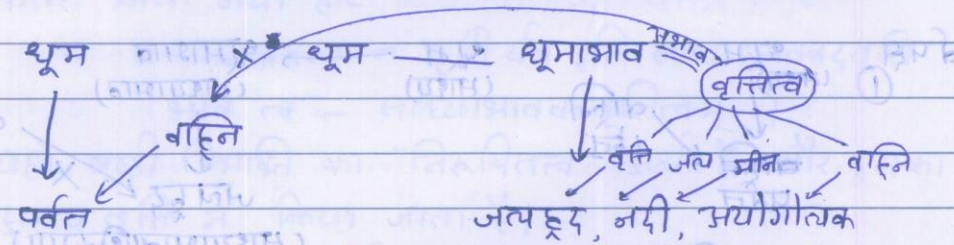


साध्याभाव के एक ही अधिकरण से निरूपित वृत्तिता विशेषवृत्तिता होती है, वृत्तित्वसामान्य नहीं। अतः वृत्तित्व-सामान्य ~~का~~ लेने के लिए साध्याभाव के सभी अधिकरण लेने पड़ेंगे। ~~इस~~ इन सब अधिकरण में एक जगह भी हेतु

मिलने पर वृत्तित्वसामान्याभाव हेतु में नहीं घटेगा। गलत अनुमान में लक्षण न जाने से अतिव्याप्ति दूर हुई।

② 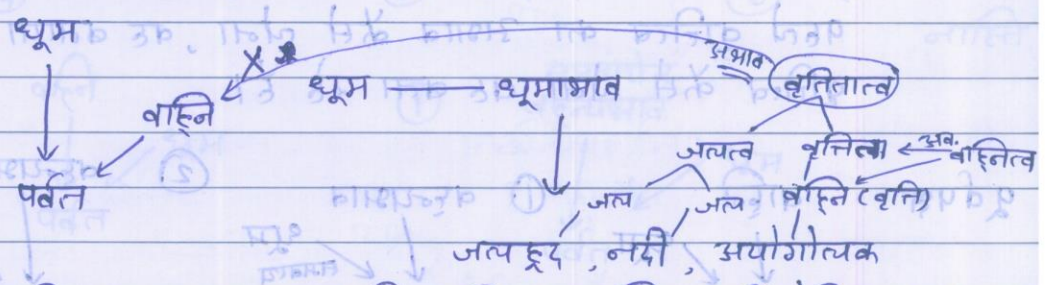


वृत्तित्वसामान्याभाव यानि वृत्तितात्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक अभाव अर्थात् वृत्तितात्व का हेतु में अभाव रहना। यहाँ वह्नि की वृत्तिता का अवच्छेदक वह्नित्व है। जत्वत्व + वृत्तिता उभयाभाव वह्नि में रहता है किंतु वृत्तितात्व का अभाव अर्थात् वृत्तित्व-सामान्याभाव वह्नि में नहीं रहता। अतः अतिव्याप्ति दूर हुई। (*$ देखें Pg. 10 पर ★)

★ वृत्तित्वसामान्याभाव लेना, वृत्तित्वविशेष का अभाव नहीं।
वृत्तित्व विशेष अभाव अनेक प्रकार से होती है—
① किसी विशेष अधिकरण से निरूपित वृत्तित्व वृत्तित्वविशेष होता है। उसका अभाव।
② उभयाभाव।
③ तद्व्यक्ति नास्ति।
④ नीलघटो नास्ति, पीतघटो नास्ति इत्यादि।

इस एक परिष्कार से ऐसी सभी जगहों का वारण किया।

परिष्कार 2

साध्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वाभाव

↑ second परिष्कार

पहले वृत्तित्व का अभाव कैसे लेना, वह बताया। अब वृत्तित्व कैसे लेना वह बता रहे हैं।

पूर्वपक्ष

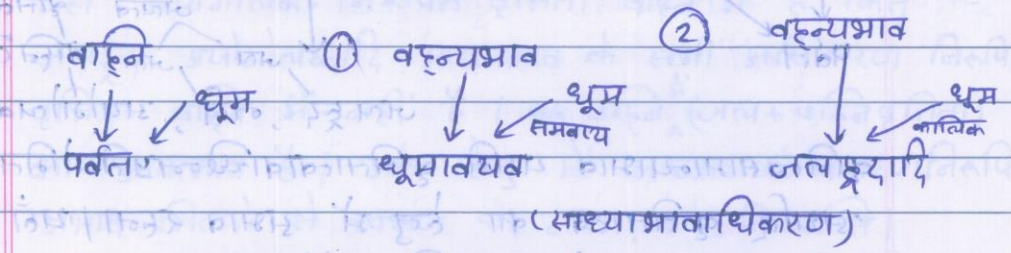


ऐसे साध्याभावाधिकरण में हेतु का वृत्तित्व होने से अव्याप्ति।

~~यहाँ अव्याप्ति दोष परिष्कार करने से गयी।~~

उत्तरपक्ष → 'साध्याभाववद्वृत्तित्व...' ⇒ साध्याभाव के अधिकरण से निरूपित वृत्ति हेतुतावच्छेदक (संबंध) से विवक्षित करना।

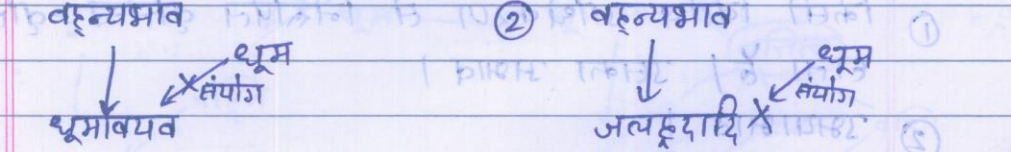


परिष्कार 3

साध्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वाभाव

↑

साध्य का अभाव कैसे लेना?

★ वह्न्यभाव कितनी तरह से हो सकते हैं? –

① संयोगेन ② समवायेन ③ कालिकेन
④ पर्वतीयवह्निर्नास्ति ⑤ तद्वह्निर्नास्ति ⑥ वह्निघटोभयं नास्ति

पूर्वपक्ष

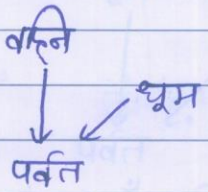


①

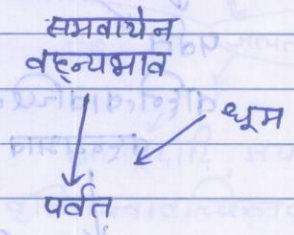


②

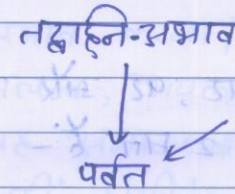


③

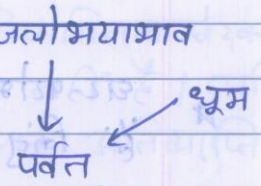


साध्याभावाधिकरण में हेतु की वृत्ति होने से अव्याप्ति।

उत्तरपक्ष 'साध्याभावश्च... बोध्यः' ⇒ साध्य का अभाव साध्यतावच्छेदक संबंध और साध्यतावच्छेदक धर्म से अवच्छिन्न जानना।

①

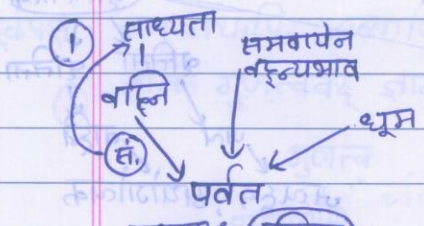


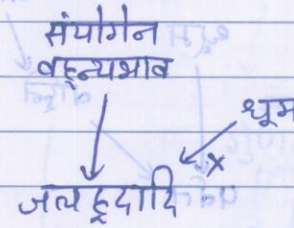


②

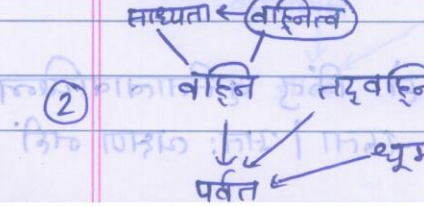


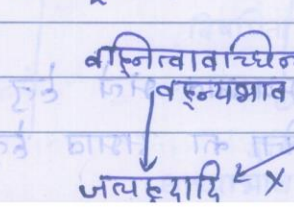

classmate
Date
Page

③ वह्नि-जलाभाव —प्रतियोगी→ पर्वत वह्नित्वावच्छिन्न वह्न्यभाव → जलह्रदादि

धूम ✓ धूम ✗

वह्नित्व — जलत्व — प्रतियोगिता

वह्नि-जलोभय

★ घट-पटोभयाभाव के प्रतियोगी घट, पट और उभय होते हैं किंतु प्रतियोगितावच्छेदक में 2 मत हैं-

① उभयत्व

② घटत्व, पटत्व, उभयत्व ।

परिष्कार-1 में पहले मत से अतिव्याप्ति होती है। पहले मत में वृत्तितात्वावच्छिन्नाभाव जोड़ने से अतिव्याप्ति दूर हो जाएगी -

धूम → पर्वत

वह्निजलोभयाभाव → वह्नि

वृत्तितात्व → वृत्तिता, वृत्तिता

जल → जलह्रद, अयोगोलक

वह्नि

उभयाभाव भले हेतु में रहता हो किंतु वृत्तितात्वावच्छिन्न वृत्तिता का अभाव हेतु में नहीं रहता। अतः लक्षण नहीं

धरने से अतिव्याप्ति नहीं होगी।
दूसरे मत में वृत्तिताव्वावच्छिन्न अभाव में वृत्तिताजत्वोभय-अभाव भी आ जाने से अतिव्याप्ति होगी—

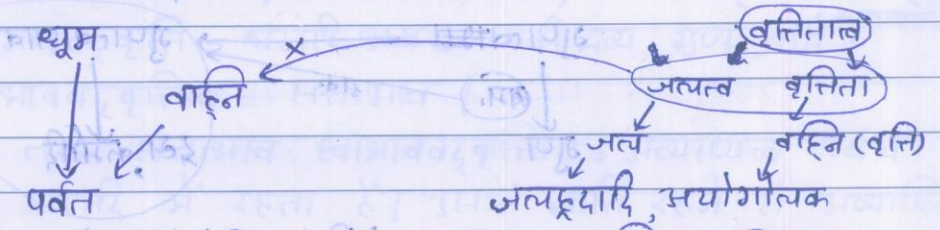


अतः यहाँ ~~प्रतियोगितावच्छेदक~~ वृत्तितात्वावच्छिन्नवृत्तिताभाव का अर्थ वृत्तितात्वेतरधर्म से अनवच्छिन्न और वृत्तितात्वावच्छिन्न अभाव करना। उपर्युक्त अभाव का प्रतियोगितावच्छेदक जत्वत्व, ज्ञेयत्व भी है, केवल वृत्तितात्व नहीं है। इसलिए यह अभाव वह्नि (हेतु) में न रहने से अतिव्याप्ति नहीं होगी।

परिष्कार 4 — साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभावं

साध्याभाव का अधिकरण किस संबंध से लेना?

पूर्वपक्ष 'ननु तथापि... अव्याप्तिः' ⇒

① ज्ञानं गुणत्ववद् ज्ञानत्वात्

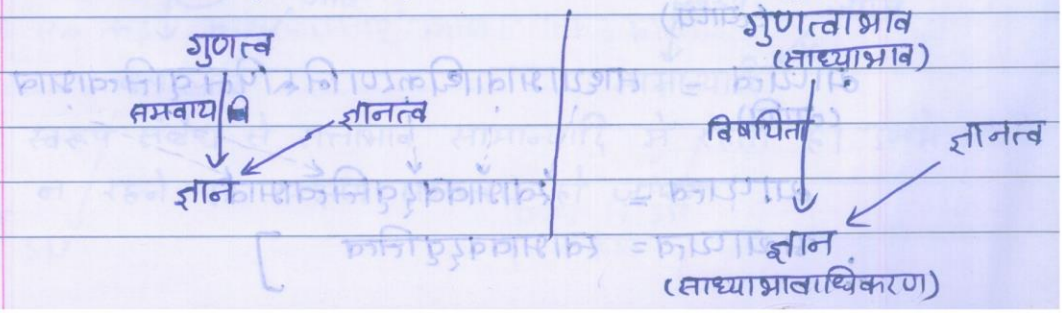

यहाँ साध्यतावच्छेदक संबंध समवाय है। समवाय संबंध से गुणत्व गुण में ही रहता है। अतः गुणत्व का समवायसंबंधावच्छिन्नाभाव द्रव्यादि छह में मिलेगा

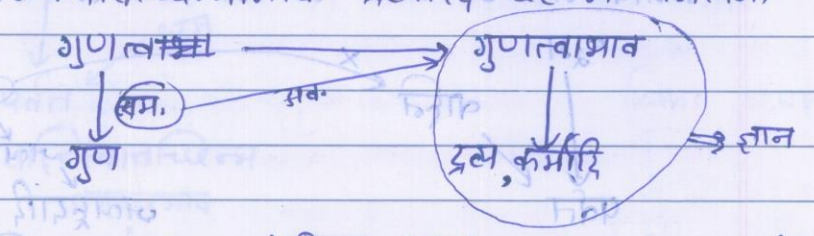


इस गुणत्वाभाव का कोई ज्ञान करे तो वह 'समवायेन गुणत्वाभाव' ज्ञान में विषयिता संबंध से रहेगा। अतः असंगति।

(2)

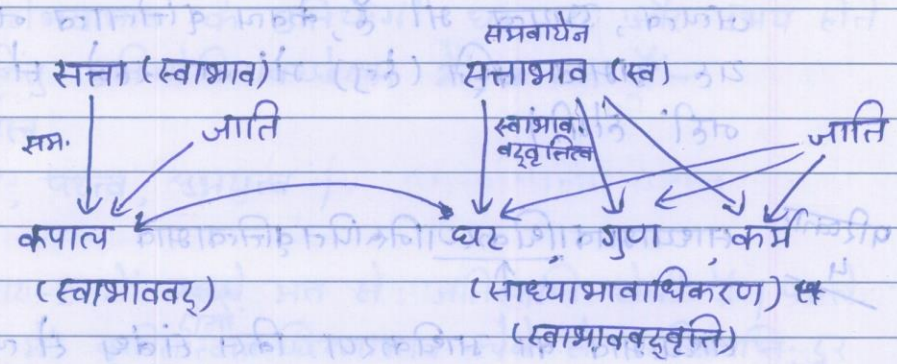


★ [ व्याप्ति व्याप्यत्व

हेतु (व्याप्य)

अतः समानाधिकरण होने से व्याप्यत्व और व्याप्ति अभिन्न हो गए।

व्याप्यत्व = साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव
(व्याप्ति)

व्याप्यत्व = स्वाभाववद्वृत्तित्वाभाव

∴ असव्याप्यत्व = स्वाभाववद्वृत्तित्व ]

सत्ताभाव को परंपरा संबंध से घट में रखना है इसलिए स्व पद से सत्ताभाव को लेना

स्व = सत्ताभाव, स्वाभाव = सत्ता, स्वाभाववत् = सत्तावत्

स्वाभाववत्वृत्ति = घटादि ~~सब~~ अवयवी द्रव्य, गुण, कर्म (कपालत्वादि)।

स्वाभाववत्वृत्तित्व = सत्ताभाव।

इस तरह सत्ताभाव स्वाभाववत्वृत्तित्व = अव्याप्यत्व संबंध से घटादि में रहता है। उसमें जाति रहने से अव्याप्ति।

उत्तरपक्ष 'साध्याभावा... विवक्षितम्' ⇒ साध्याभाव का अधिकरण अभावीयविशेषणत रूप विशेष संबंध अर्थात् स्वरूप संबंध से लेने पर यह अव्याप्ति नहीं होगी –

① 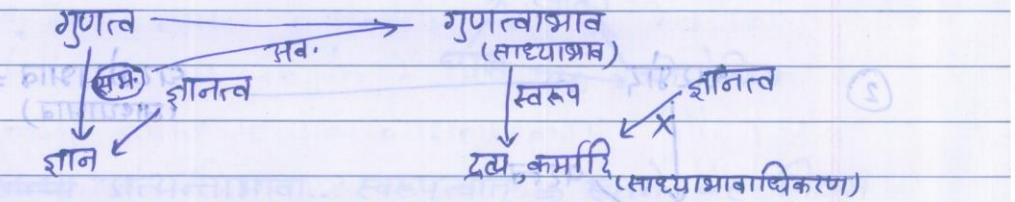


स्वरूप संबंध से गुणत्वाभाव द्रव्य, कर्मादि में रहता है। उनमें ज्ञानत्व हेतु न रहने से लक्षण समन्वय हो जाएगा।

② 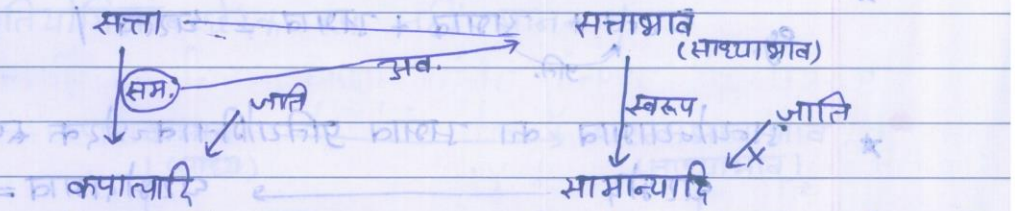


स्वरूप संबंध से सत्ताभाव सामान्यादि में रहता है। उनमें जाति न रहने से लक्षण समन्वय हो जाएगा।

पूर्वपक्ष 'नच ... वाच्यम्, ...तथा सति ... अव्याप्तिः' ⇒ साध्याभावाधिकरण स्वरूप संबंध से लेना चाहिए, ऐसा भी आपको नहीं कहना चाहिए क्योंकि वैसा लेने पर 'घटत्वात्यन्ताभाववान् पटत्वात्' अथवा 'घटान्योन्याभाववान् पटत्वात्' इत्यादि अनुमानों में साध्याभाव घटत्वादि का स्वरूप संबंध से अधिकरण ही अप्रसिद्ध है, इससे अव्याप्ति होगी।

① घटत्वाभाव ——— घटत्व (साध्याभाव)
घटत्वाभाव → पटत्व → पट
घटत्व (साध्याभाव) → स्वरूप → X

② घटभेद ——— घटभेदाभाव = घटत्व (साध्याभाव)
घटभेद → पटत्व → पट
घटभेदाभाव = घटत्व (साध्याभाव) → स्वरूप → X

★ अत्यन्ताभाव का अभाव प्रतियोगी रूप होता है।
eg. घटत्व + अभाव + अभाव = घटत्व।
(अभाव → प्रति.)

★ अन्योन्याभाव का अभाव प्रतियोगितावच्छेदक रूप होता है।
घटभेद ——— घटभेदाभाव = घटत्व
घटभेद → घट से अन्य सब वस्तु
घटभेदाभाव = घटत्व → घट

घटभेदाभाव घट में रहता है और घटत्व भी घट रहता है तथा जहाँ घटत्व रहता है वहाँ घटभेदाभाव अवश्य रहता है। अतः घटत्व और घटभेदाभाव समनियत हैं। इसलिए सामानाधिकरण्य संबंध से वे दोनों एक ही हैं। नैयायिक ऐसे समनियत अभावों को प्रतियोगी आदि रूप ही मानते हैं। यदि एक न मानें तो उन्हें अनंत अभाव मानने का गौरव होता है। जैसे- द्रव्यत्वाभावाभाव = द्रव्यत्व, द्रव्यत्वाभावाभावाभाव = द्रव्यत्वाभाव ...।

यहाँ घटभेदाभाव का प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है -

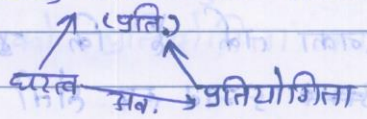


उत्तरपक्ष 'अन्यो अत्यन्ताभावा... स्वरूपत्वात्' ⇒ हमने यह नियम अत्यन्ताभाव के अभाव और अन्योन्याभाव के अभाव को अतिरिक्त सातवाँ पदार्थ मानकर किया है। यहाँ अत्यन्ताभाव के अभाव को प्रतियोगी और अन्योन्याभाव के अभाव को प्रतियोगितावच्छेदक रूप नहीं मानना।

① 

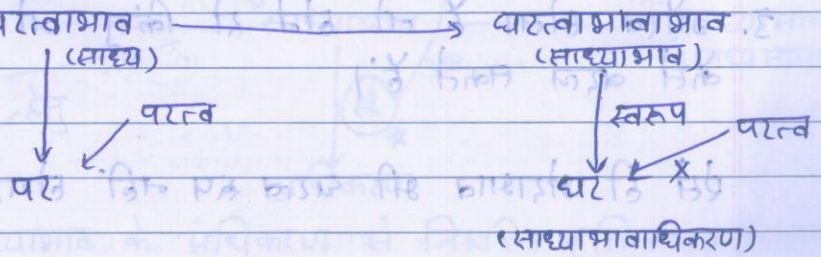

② घटभेद ——— घटभेदाभाव (साध्याभाव)

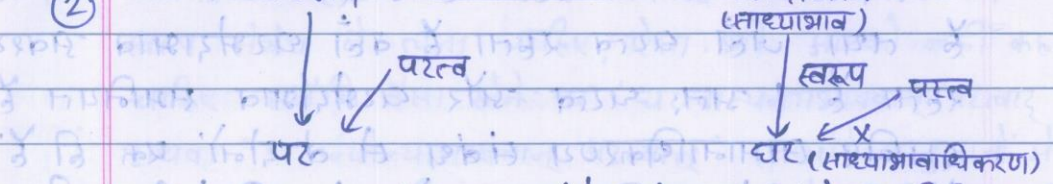


इस तरह अभावाभाव और भेदाभाव को अतिरिक्त पदार्थ मानने पर स्वरूप संबंध से उनका अधिकरण घट मिलेगा, इसमें पटत्व हेतु न रहने से व्यभिचार समन्वय हो जाएगा।

★ कुछ नैयायिक अभावाभाव और भेदाभाव को क्रमशः प्रतियोगी और प्रतियोगितावच्छेदक नहीं मानते। वे उन्हें सातवाँ अभाव नामक पदार्थ मानते हैं। ऐसा मानने में उनका तर्क है कि अभावाभाव अभाव रूप है, उसकी प्रतीति अभाव रूप होती है तो वह भाव रूप कैसे हो सकता है। जैसे- घटत्वाभावाभाव की प्रतीति 'घटत्वाभावो नास्ति' होती है, अतः वह घटत्व रूप नहीं होगा।

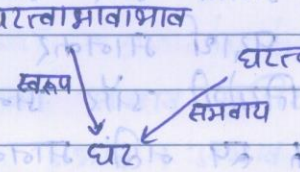


प्र. ऐसे तो आपको अनंत अभाव मानने का गौरव होगा?

उ. गौरव होता है तो होने दो किंतु जो प्रतीति है, उसे कैसे बदल सकते हैं।

ऐसे ही भेदाभाव भी घटत्व रूप नहीं होगा-

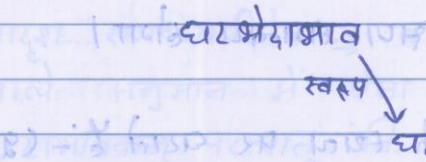


उत्तरपक्ष अथवा 'अत्यन्ताभावा... ~~समवायादिरूप~~ विशेषणम्' ⇒ ~~यदि~~ अत्यन्ताभाव और अन्योन्याभाव के अत्यन्ताभाव को प्रतियोगी और प्रतियोगिता-वच्छेदक रूप मानने के मत से साध्यतावच्छेदकसंबंध से अवच्छिन्न प्रतियोगिता के निरूपक ऐसे साध्याभाव में रहती (वृत्ति) तथा साध्यसामान्य से निरूपित ऐसी प्रतियोगिता के अवच्छेदक संबंध से साध्याभाव की अधिकरण की विवक्षा करने से अव्याप्ति नहीं होगी। ⇒ उपर्युक्त परिष्कार में वृत्ति तक के अन्त वाले वाक्य को प्रतियोगिता का विशेषण बनाना।

अर्थात् पहले साध्य का अभाव लेना, फिर उसका भी अभाव (यानि साध्याभावाभाव) इस तरह लेना कि वह साध्यसामान्य बन जाए। ऐसे साध्यसामान्य से निरूपित प्रतियोगिता, जो साध्याभाव में रहती है, उस प्रतियोगिता के अवच्छेदक संबंध से साध्याभाव का अधिकरण लेना –

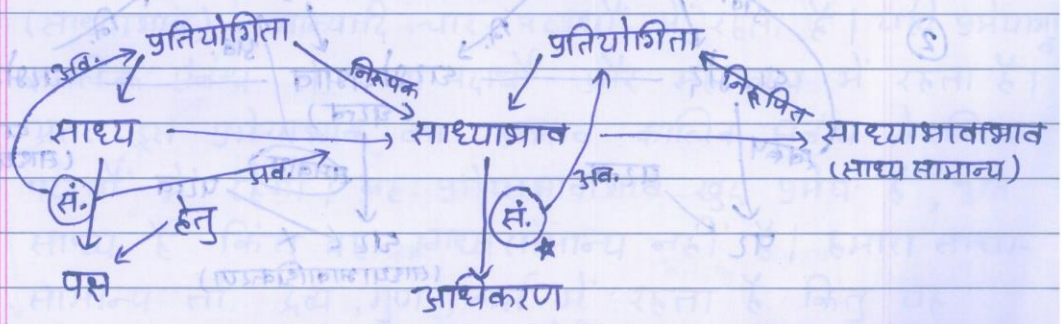


इस साध्याभाव के अधिकरण से निरूपित वृत्तित्व का अभाव

हेतु में रहने पर लक्षण समन्वय होगा।

इस लक्षण को पूर्वपक्ष के स्थल पर घटाते हैं - (पूर्वपक्ष पृ.14)

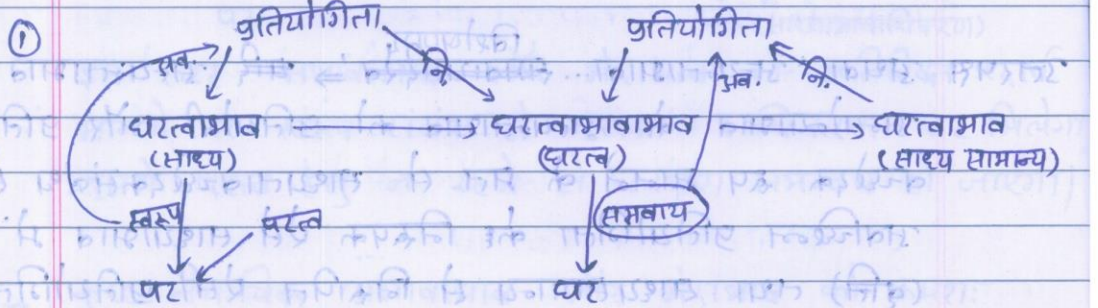


उपर्युक्त परिष्कार से प्रतियोगितावच्छेदक संबंध मिलेगा समवाय, इस संबंध से साध्याभाव घटत्व का अधिकरण घट, उसमें परत्व हेतु न होने से लक्षण घट जाएगा -

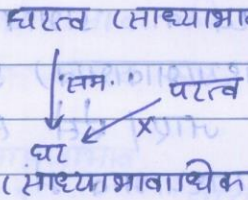


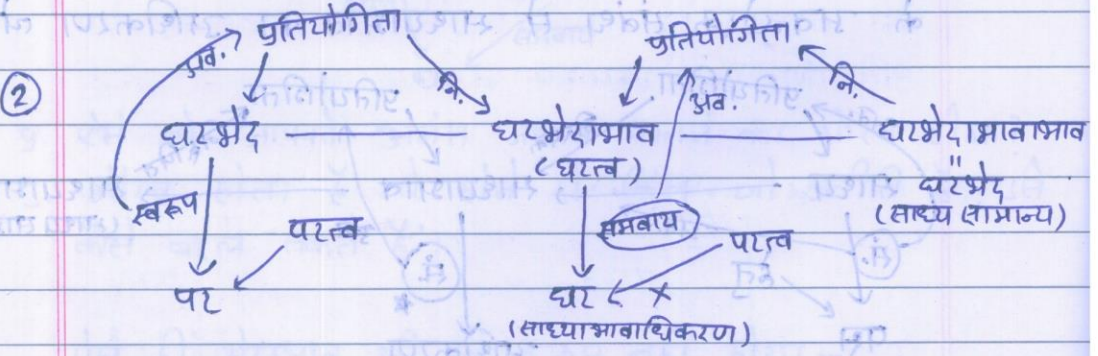


इस प्रकार लक्षण समन्वय हो जाएगा।

'तादृश... समवायादिरेव' ⇒ वह्निमान् धूमात् वि. भाव रूप साध्य वाले अनुमान में ऐसा संबंध स्वरूप ही होगा तथा घटाभाववान् पटत्वात् वि. अभाव साध्य वाले अनुमान में ऐसा संबंध समवायादि ही है।

[उपर्युक्त परिष्कार में साध्यसामान्य से निरूपित प्रतियोगिता का अवच्छेदक संबंध ही क्यों लिया? यदि 'साध्यीय... लेते तो क्या आपत्ति आती –]

पूर्वपक्ष

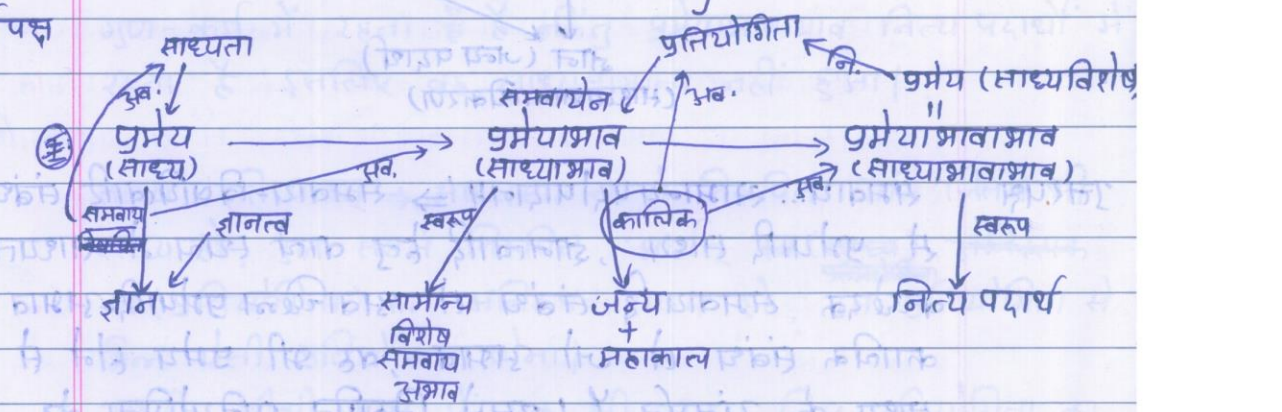


प्रमेय समवाय संबंध से साध्य है, ज्ञानत्व हेतु है। यहाँ पक्ष ज्ञान होगा। साध्यता अवच्छेदक संबंध समवाय से प्रमेयाभाव (साध्याभाव) सामान्यादि चार पदार्थों में रहता है। यही प्रमेयाभाव कालिक संबंध से जन्य पदार्थों और महाकाल में रहता है। अतः इस प्रमेयाभाव का अभाव कालिक संबंध से नित्य पदार्थों में रहेगा। यह प्रमेयाभावाभाव खुद प्रमेय है, अतः साध्य है किंतु वह साध्यसामान्य नहीं है। हमारा साध्य-सामान्य तो द्रव्य, गुण, कर्म में रहता है किंतु यह प्रमेयाभावाभाव तो नित्य पदार्थों में रहता है। इसलिए यह

साध्य तो है, किंतु साध्यसामान्य नहीं है। इस साध्यविशेष से निरूपित प्रतियोगिता का अवच्छेदक संबंध होगा कालिक। इस कालिक संबंध से साध्याभाव का अधिकरण मिलेंगे जन्य पदार्थ। जन्य पदार्थ में ज्ञान भी है, उसमें ज्ञानत्व हेतु रहने से अव्याप्ति हुई -

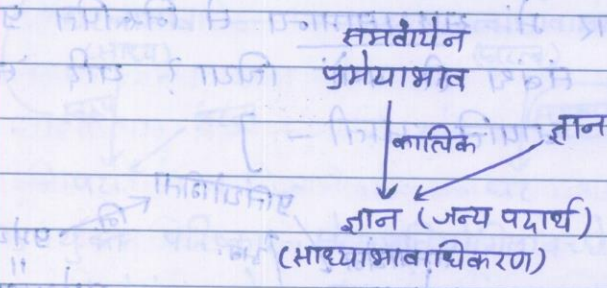


उत्तरपक्ष 'समवाय... सामान्यपदोपादानम्' ⇒ समवाय-विषयित्वादि संबंध से प्रमेयादि साध्य, ज्ञानत्वादि हेतु वाले स्थल में साध्यता-अवच्छेदक समवायादि संबंध से अवच्छिन्न प्रमेयादि-अभाव का कालिक संबंध से जो अभाव, वह भी प्रमेय होने से साध्य के अंतर्गत है। उससे निरूपित प्रतियोगिता के अवच्छेदक कालिकादि संबंध से साध्याभाव के अधिकरण (जन्य पदार्थ) में ज्ञानत्वादि हेतु की वृत्ति होने से अव्याप्ति होती है। इस अव्याप्ति के वारण के लिए सामान्य पद ग्रहण किया है।

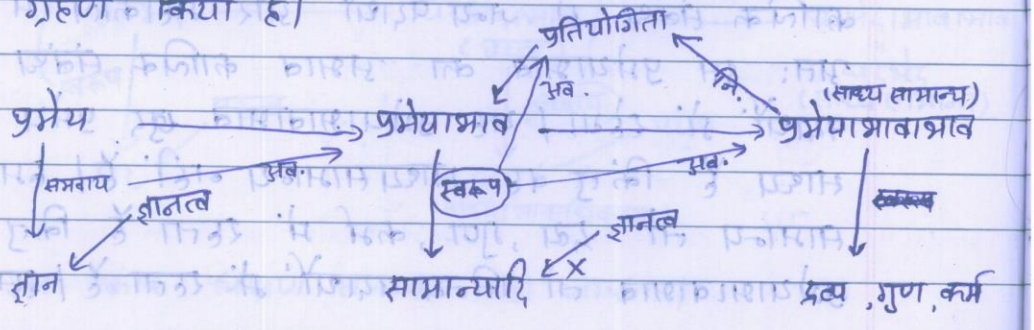

★ प्र. साध्य के अभाव का अभाव साध्यसामान्य हो गया है या नहीं? यह कैसे पता चलेगा?

उ. साध्य जितने अधिकरण में रहता है, ~~उसे~~ साध्याभावाभाव भी उतने ही अधिकरण में रहे तो वह साध्यसामान्य हो जाता है।

यहाँ साध्य प्रमेय समवाय संबंध से द्रव्य-गुण-कर्म में रहे द्रव्यत्वादि है। साध्याभावाभाव भी उतने में ही रहता है इसलिए वह साध्यसामान्य हो गया है। पूर्वपक्ष में साध्य प्रमेय द्रव्य-गुण-कर्म में रहता है है किंतु प्रमेयाभावाभाव नित्य पदार्थों में रहता है इसलिए वह साध्यसामान्य नहीं हुआ।

'साध्य... इति यावत्' ⇒ साध्यसामान्य से निरूपित यानि जितने भी साध्य हो, उन सबसे निरूपित अर्थात् ~~स्व (साध्य) अनिरूपक~~ स्व (प्रतियोगिता) का अनिरूपक साध्य हो, उस प्रतियोगिता से भिन्न ऐसी प्रतियोगिता त्वेना।

अर्थात् सीधी भाषा में एक भी साध्य जिस प्रतियोगिता का अनिरूपक न हो, ऐसी प्रतियोगिता में साध्यसामान्य से निरूपितत्व रहेगा।

पूर्वपक्ष व्याप्ति के लक्षण में साध्याभाव का अधिकरण लेने के लिए इस इतने लंबे संबंध को लिखा, फिर उसमें भी यावत्त्व का प्रवेश किया। यह तो बहुत गौरव है।

उत्तरपक्ष 'अस्य... अदोषत्वात्' ⇒ अभाव साध्यक स्थल और अभाव साध्यक स्थल, दोनों जगह एक ही रूप से संबंध कहने से यह गौरव

हुआ है इसलिए यह दोष नहीं है।

'अनुमिति... उपादेयम्' ⇒ व्याप्ति ज्ञान अनुमिति का कारण है, उसमें अनुमितिकारणता रहती है, इसका अवच्छेदक व्याप्ति होगी –

व्याप्ति —अव.→ अनुमितिकारणता
विषयिता
व्याप्ति ज्ञान

अनुमितिकारणतावच्छेदक यानि व्याप्ति में भाव साध्यक स्थल पर असमवायिविशेषणता संबंध से साध्याभावाधिकरण और अभाव साध्यक स्थल पर यथायोग्य समवायादि संबंध से साध्याभावाधिकरण लेना चाहिए।

'साध्य... भेदात्' ⇒ अत्यंत-अत्यंत स्थल पर अत्यंत-अत्यंत ~~संबंध~~ व्याप्ति कक्ष्ये होने से संबंध भी बदलेगा और साध्य-हेतु के भेद से कार्य-कारण भाव भी बदलेगा।

पूर्वपक्ष

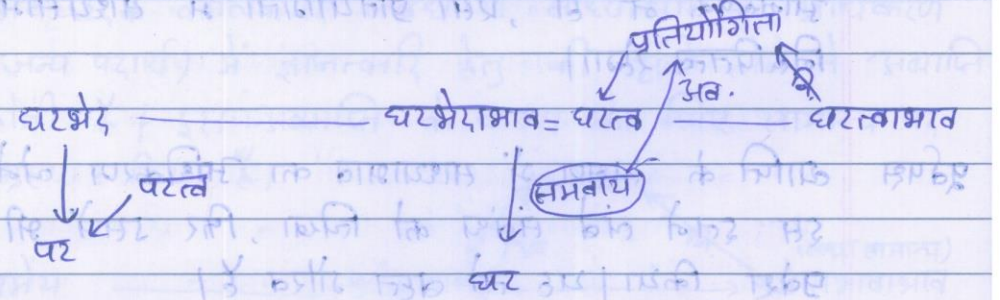


उपर्युक्त परिष्कार करने पर भी भेद साध्यक स्थल में तो अव्याप्ति वैसी ही रहेगी क्योंकि यहाँ साध्याभाव घटत्व में साध्य से

निरूपित प्रतियोगिता ही नहीं है और उस प्रतियोगिता का अवच्छेदक समवाय संबंध भी नहीं होगा, भेद की प्रतियोगिता का अवच्छेदक तादात्म्य संबंध ही होता है।

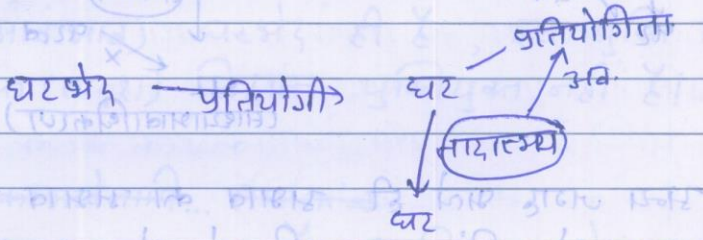


उत्तरपक्ष 'न च तथापि... तदवस्थेति वाच्यम्' ⇒ घटभेदवान् पटत्वात् इत्यादि स्थल में भेद साध्यक स्थल में घटत्वादि रूप साध्याभाव में न तो साध्य निरूपित प्रतियोगिता है और न तो उस प्रति प्रतियोगिता का अवच्छेदक समवाय संबंध है क्योंकि तादात्म्य ही उसका अवच्छेदक है, अतः अव्याप्ति तो वैसे ही होगी। ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि -

'अत्यन्ताभावस्य... प्रतियोगित्वात्' ⇒ जैसे अत्यन्ताभावाभाव प्रतियोगि रूप होता है वैसे घटभेद घटभेदाभावत्व से अवच्छिन्न अभा रूप होने के कारण (अर्थात् घटभेद के घटभेदाभावाभाव रूप से द्वारा) घटभेदाभावरूप और प्रतियोगितावच्छेदक रूप घटत्व भी समवाय संबंध से घटभेद का प्रतियोगी है। [तथा समवाय संबंध से उसके अधिकरण घट में पटत्व हेतु नहीं रहने से अव्याप्ति नहीं होगी।]

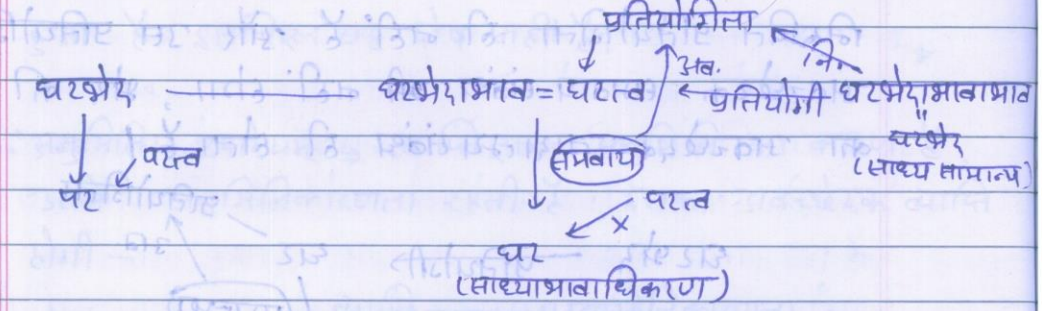


पूर्वपक्ष अन्य जगह भले ही अभाव का अभाव प्रतियोगी रूप हो जाता हो किंतु घटादि के भेद का अभावाभाव घटादि के भेद रूप नहीं होता किंतु उसके प्रतियोगितावच्छेदक घटत्वादि के अभाव रूप ~~होता~~ है ही होता है, ऐसा सिद्धान्त है।

[इस सिद्धान्तानुसार घटभेदाभाव घटत्व होता है इसलिए घटभेदाभावाभाव घटत्वाभाव होगा। यह घटत्वाभाव साध्य सामान्य नहीं है। अतः साध्य सामान्य से निरूपित प्रतियोगिता ही अप्रसिद्ध होने से उसका अवच्छेदक संबंध भी नहीं मिलेगा और अव्याप्ति होगी। (चित्र पृ. 22 पर)]

उत्तरपक्ष न चान्यत्र... सिद्धान्त इति वाच्यम्' ⇒ अन्यत्र अत्यन्ताभावाभाव प्रतियोगीरूप होने पर भी घटभेदाभावाभाव घटादिभेद रूप नहीं किंतु उसके प्रतियोगितावच्छेदक घटत्वाभाव रूप ही है, ऐसा सिद्धान्त है, ऐसा आपको नहीं कहना चाहिए।

'यथा... युक्तिसहः' ⇒ जैसे घटत्वावच्छिन्न घट का ज्ञान होने पर घटाभाव का ज्ञान नहीं होने से और घटाभावाभाव का व्यवहार होने से घटाभावाभाव घटस्वरूप है, वैसे

घटभेद का ज्ञान होने पर घटभेदाभाव का ज्ञान नहीं होने से और घटभेदाभावाभाव का व्यवहार होने से घटभेदाभाव-त्व से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक अभाव (अर्थात् घटभेदाभावाभाव) घटभेद ही है, इस युक्ति से आपका उपर्युक्त (तादृश) सिद्धान्त युक्तियुक्त नहीं है।

~~'विनिगमकाभावेनापि... सम्मतः'~~ ⇒

पूर्वपक्ष घटभेदाभाव घटत्व रूप है, इसलिए घटभेदाभावाभाव घटत्वाभाव रूप ही होगा न?

उत्तरपक्ष 'विनिगमकाभावेनापि... सम्मतः' ⇒ घटभेदाभाव घटत्व रूप है, इसमें लाघव तर्क है। किंतु ~~आपकी युक्ति से घटभेदाभावाभाव~~ आपकी युक्ति से घटत्वाभाव रूप भी होता है और हमारी उपर्युक्त युक्ति से घटभेद रूप भी होता है। यहाँ दोनों पक्ष में कोई अनुकूल्य तर्क नहीं है। अतः विनिगमक का अभाव है।

विनिगमक के अभाव से भी ~~घटभेद~~ घटत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव की तरह (अर्थात् घटत्वाभाव की तरह) घटभेदाभावाभाव घटभेद रूप भी सिद्ध होगा और अविरोधी (अप्रत्यूह) होगा। इसी कारण से आपका उपर्युक्त सिद्धान्त उपाध्याय (टीकाकार मधुरानाथ के गुरु) को सम्मत नहीं है।

'अत एव... आचार्याः' ⇒ इसी कारण से उदयनाचार्य ने 'अभाव-विरहात्मत्वं वस्तुनः प्रतियोगिता कहा है। वस्तु की प्रतियोगिता अभाव के अभावत्व रूप है—

classmate
Date
Page

प्रतियोगिता ← Same → अभावाभावत्व

घट ←प्रतियोगी→ घटाभाव ←प्रतियोगी→ घटाभावाभाव

'अन्यथा... आपत्तेश्च' ⇒ यदि ~~घट~~ घटभेदाभावाभाव को घटभेद प्रतियोगी रूप न मानो (अन्यथा) तो ① घटभेदाभाव ~~के~~ के प्रतियोगी ऐसे घटभेद में इस लक्षण की अव्याप्ति होगी और ② भेद के प्रतियोगितावच्छेदक घटत्व के अभाव में इस लक्षण की अतिव्याप्ति होगी -

① घटभेदाभावाभावत्व ✗ प्रतियोगिता

घटभेद ←प्रतियोगी— घटभेदाभाव

(घटभेदाभावाभाव ✗)

यदि ~~घटभेदाभावाभाव~~ को घटभेद रूप नहीं मानेंगे तो घटभेद घटभेद में घटभेदाभावाभावत्व नहीं रहेगा और उसमें यह अभावाभावत्व नहीं रहने से उपर्युक्त प्रतियोगिता का लक्षण नहीं घटेगा। घटभेद घटभेदाभाव का प्रतियोगी है और उसमें प्रतियोगिता ~~रहती~~ रहती है। अतः उपर्युक्त प्रतियोगिता का लक्षण नहीं घटने से उसमें अव्याप्ति होगी।

② प्रतियोगिता ✗ अभावाभावत्व

घटभेद —— घटभेदाभाव = घटत्व ←प्रतियोगी घटभेदाभावाभाव = घटत्वाभाव

पटादि

यदि घटभेदाभावाभाव को घटभेद रूप नहीं मानेंगे तो ~~घटत्व~~ घटत्वाभाव रूप ही मानना पड़ेगा। ~~इस~~ इस घटत्वाभाव में

अभावाभावत्व तो रहता है किंतु यह किसी का प्रतियोगी नहीं होने से इसमें प्रतियोगिता नहीं रहती। इस तरह यहाँ प्रतियोगिता का लक्षण चला जाने से अतिव्याप्ति हुई।

[अतः निष्कर्ष यह है कि इन अव्याप्ति और अतिव्याप्ति को दूर करने के लिए भेदाभावाभाव को प्रतियोगी भेद रूप और प्रतियोगितावच्छेदक के अभाव रूप, दोनों स्वरूप में मानना चाहिए।]

पूर्वपक्ष इस प्रकार तो घटत्वाभाव भी घटभेद रूप हो जाएगा,
घटभेदाभावाभाव = घटभेद = घटत्वाभाव

उत्तरपक्ष 'न चैवं ... आपत्तिरिति वाच्यम्' ⇒ घटत्वत्व से अवच्छिन्न प्रतियोगिता का निरूपक घटत्वाभाव भी घटभेद रूप होने की आपत्ति होगी, ऐसा भी आपको नहीं कहना चाहिए। क्योंकि –

'तदत्यन्ताभावत्व... ~~अवश्यासत्~~ अभ्युपगमात्' ⇒ (तद् = घटभेद) घटभेदाभावत्व से अवच्छिन्न प्रतियोगिता के निरूपक अभाव (अर्थात् घटभेदाभावाभाव) को ही हम घटभेदस्वरूप मानते हैं।
(ऐसा मानने का कारण-)
'तद्ज्ञाग्रहे... व्यवहारात्' ⇒ क्योंकि घटभेद का ज्ञान होने पर 'घटभेदाभावो नास्ति' ऐसा ही व्यवहार होता है अर्थात् घटत्वाभाव का व्यवहार नहीं होता।

'उपाध्यायैः... अभ्युपगमात्'⇒ उपाध्याय (टीकाकार के गुरु) द्वारा तो घटत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक घटत्वाभाव का भी घटभेद स्वरूप स्वीकारा जाता है।

[हमारा व्याप्ति का लक्षण साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव है। इस लक्षण में साध्याभाव का अधिकरण कैसे लेना, इसका परिष्कार चल रहा है (पृ. 11)। साध्याभाव का अधिकरण साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्ति-साध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध से लेना, ऐसा परिष्कार किया (पृ. 17)। इस लक्षण में प्रतियोगिता के दो विशेषण हैं – (1) साध्यसामान्य से निरूपित (2) साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्ति। 'साध्यसामान्य से निरूपित' विशेषण नहीं लगाते तो क्या आपत्ति होती, वह बता दिया (पृ. 19)। अब दूसरा विशेषण नहीं लगाने पर क्या आपत्ति होती, वह बता रहे हैं –]

पूर्वपक्ष इस प्रकार साध्याभावाधिकरण की साध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्ध से ही विवक्षा कर दो। साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्ति को प्रतियोगिता का विशेषण कहने की क्या आवश्यकता है?

उत्तरपक्ष 'न चैवं... विशेषणत्वेनेति वाच्यम्'⇒ साध्याभा ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि –

कोई व्यक्ति आत्मत्वावच्छिन्न आत्मा का ज्ञान करे तब आत्मत्व ज्ञान (प्रमा) का विशेषण/प्रकार होता है तथा आत्मा विशेष्य होता है। अतः आत्मा में विशेष्यत्व रहेगा।

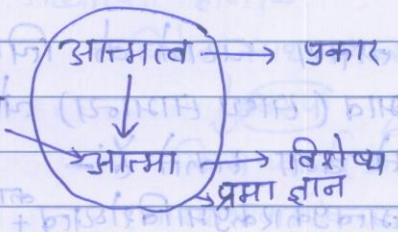


यह ज्ञान आत्मत्वप्रकारकप्रमा कहलाएगा। इस प्रमा का विशेष्यत्व आत्मा में रहता है।

आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्व
स्वरूप
आत्मा
कालिक
जन्यपदार्थ+महाकाल

यही विशेष्यत्व कालिक संबंध से जन्य पदार्थ और महाकाल में रहता है क्योंकि कालिक संबंध से 'सर्वं सर्वत्र तिष्ठति' किंतु 'नित्येषु कालिकायोगात्' न्याय से वह नित्य पदार्थ में नहीं रहता।

इस आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्व का कालिक संबंध से अभाव नित्य पदार्थ में रहेगा क्योंकि वह कालिक संबंध से जन्य पदार्थ में रहता है तो अभाव नित्य में रहेगा। इन नित्य पदार्थों में एक आत्मा भी है। यह आत्मत्वप्रकारकप्रमा-विशेष्यत्व का कालिकसंबंधावच्छिन्नअभाव स्वरूप संबंध से आत्मा में रहता साध्य है अ, आत्मा पक्ष है और आत्मत्व हेतु है। यह सत्प्रत्यय है। इसमें लक्षण न जाने से अव्याप्ति

होगी।

साध्य → [आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्व + कालिक अभाव] —स्वरूप→ आत्मा (नित्यपदार्थ) ; आत्मत्व ↓

व्याप्ति का लक्षण घटाने के लिए साध्याभाव और साध्याभावाभाव (साध्य सामान्य) लेना है। यहाँ साध्यसामान्य दो तरह से बना सकते हैं—

① साध्य → [आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्व + कालिक अभाव] —स्वरूप→ आत्मा (नित्यपदार्थ)
कालिक → जन्यपदार्थ

साध्याभाव → [साध्य] + कालिक अभाव —स्वरूप→ नित्य पदार्थ

साध्याभावाभाव → [साध्य] + कालिक अभाव + ~~स्वरूप~~ स्वरूप अभाव —स्वरूप→ जन्य पदार्थ

यह साध्याभावाभाव साध्यसामान्य है क्योंकि हमारा साध्य कालिक संबंध से जन्य पदार्थ में रहता है और यह साध्याभावाभाव (कालिकसंबंधावच्छिन्नाभाव + स्वरूपसंबंधावच्छिन्नाभाव) भी जन्य पदार्थ में रहता है। अतः समान अधिकरण में रहने से यह साध्याभावाभाव साध्यसामान्य है।

यहाँ चित्र ऐसा हुआ—

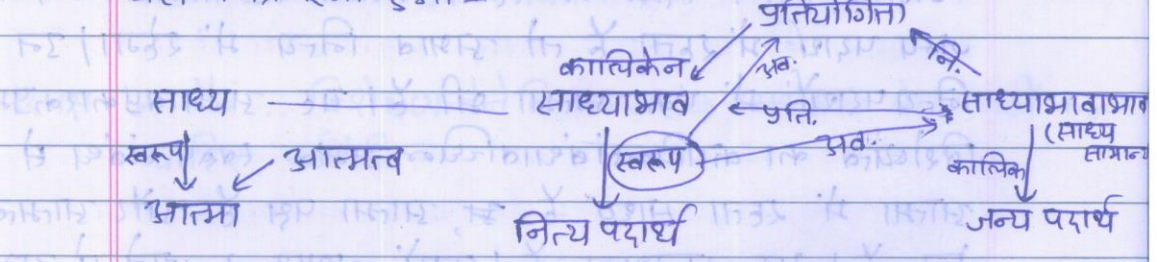

यहाँ साध्यसामान्य से निरूपित प्रतियोगितावच्छेदक संबंध होगा स्वरूप। स्वरूप संबंध से साध्याभाव के अधिकरण होंगे नित्य पदार्थ। नित्य पदार्थ में आत्मा भी है। उसमें आत्मत्व हेतु रहने से अव्याप्ति होगी—

कालिकेन साध्याभाव

(स्वरूप) ↙ ↘ आत्मत्व

नित्यपदार्थ (आत्मा)

(साध्याभावाधिकरण)

② साध्य → [आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्व + कालिक अभाव] स्वरूप → आत्मा (नित्यपदार्थ)

आत्मत्व

साध्याभाव → [साध्य] स्वरूप + अभाव ← स्वरूप → जन्यपदार्थ
कालिक → जन्यपदार्थ

साध्याभावाभाव → [साध्य] स्वरूप + अभाव कालिक + अभाव → स्वरूप → नित्यपदार्थ

यह साध्याभावाभाव भी साध्यसामान्य है क्योंकि हमारा साध्य स्वरूप संबंध से नित्यपदार्थ में रहता है और यह साध्याभावाभाव (स्वरूपसंबंधावच्छिन्नाभाव + कालिकसंबंधावच्छिन्नाभाव) भी नित्यपदार्थ में रहता है। अतः समान अधिकरण में रहने से यह साध्याभावाभाव साध्यसामान्य है।

यहाँ चित्र ऐसा होगा—

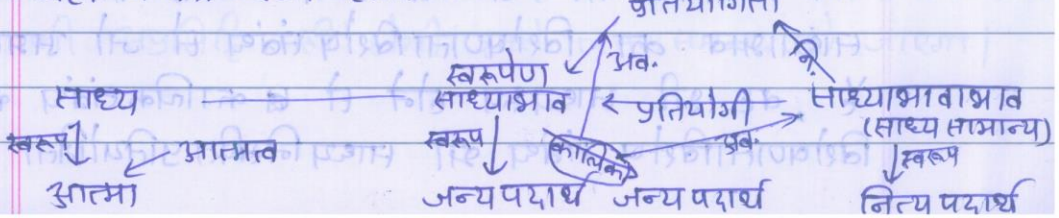

यहाँ साध्यसामान्य से निरूपित प्रतियोगितावच्छेदक संबंध होगा कालिक। कालिक संबंध से साध्याभावाधिकरण मिलेगा जन्य पदार्थ। जन्य पदार्थ में आत्मत्व हेतु न रहने से लक्षण घट जाएगा, अव्याप्ति नहीं होगी।

यहाँ हमने ① में कालिक+स्वरूप संबंध से अभाव लिया और ② में स्वरूप + कालिक संबंध से अभाव लिया। दोनों तरह से प्रतियोगिता तो साध्यसामान्य से ही निरूपित थी किंतु फिर भी ① में अव्याप्ति हुई और ② में लक्षण समन्वय हुआ। इसका कारण यह है कि ① में हमने साध्याभाव साध्यतावच्छेदक संबंध स्वरूप से नहीं लिया किंतु कालिक संबंध से लिया। ② में साध्याभाव साध्यतावच्छेदक संबंध से लिया इसलिए लक्षण समन्वय हुआ। अतः अव्याप्ति को दूर करने साध्यतावच्छेदकसंबंधावच्छिन्न साध्याभाववृत्ति साध्यसामान्यीय प्रतियोगितावच्छेदक संबंध से साध्याभाव का अधिकरण लेना चाहिए अर्थात् (पृ.28 पर [ ] में बताए गए) दोनों विशेषण आवश्यक हैं।

इसी बात को टीकाकार कहते हैं-

'कालिक... वृत्तेः' ⇒ आत्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्व का कालिक संबंधावच्छिन्नाभाव साध्य होने पर और आत्मत्व हेतु होने पर अव्याप्ति की आपत्ति होगी क्योंकि कालिकसंबंधावच्छिन्न साध्याभाव का विशेषणतासंबंध से जो अभाव होता है, वह भी साध्यरूप होने से कालिकसंबंध की तरह विशेषणतासंबंध भी साध्यनिरूपित प्रतियोगिता का

अवच्छेदक संबंध होगा। उस (स्वरूप) संबंध से आत्मत्व-प्रकारकप्रमाविशेष्यत्व रूप साध्याभाव वाले आत्मा में आत्मत्व हेतु की वृत्ति होती है। (इसलिए अव्याप्ति होगी)।

पूर्वपक्ष

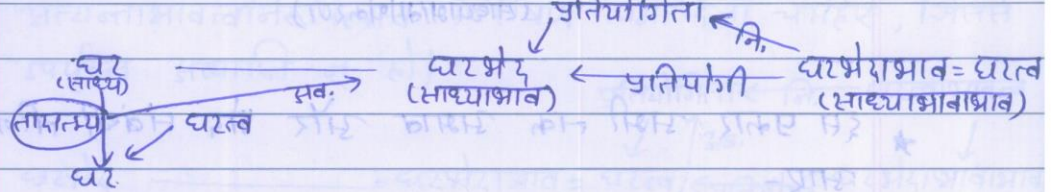


घटः घटवान् घटत्वात्, यह सत्प्रत्यय है। यहाँ साध्यतावच्छेदक संबंध तादात्म्य। व्याप्ति का लक्षण घटाने के लिए साध्याभाव साध्यतावच्छेदकसंबंध से लेना है, ऐसा हमने पहले परिष्कार किया है। तो तादात्म्य संबंध से साध्य घट का अभाव होगा घटभेद। उसका पुनः अभाव लेने पर साध्याभावाभाव हुआ घटभेदाभाव। भेदाभाव प्रतियोगितावच्छेदक रूप होने से घटभेदाभाव घटत्व होगा। यहाँ साध्याभाव घटभेद में रही प्रतियोगिता घटत्व से निरूपित है, साध्य घट से नहीं। इसलिए साध्यनिरूपित प्रतियोगिता ही अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति हुई।

उत्तरपक्ष 'प्रतियोगिता... नाप्रसिद्धिः' ⇒ अन्योन्याभाव का अभाव प्रतियोगितावच्छेदक की तरह प्रतियोगी भी होता है। इस परिष्कार से तादात्म्य संबंध से साध्यता होने पर भी साध्यतावच्छेदक-संबंधावच्छिन्न साध्याभाव में वृत्ति साध्यसामान्यीय प्रतियोगिता की अप्रसिद्धि नहीं होगी। इससे लक्षण समन्वय हो जाएगा।

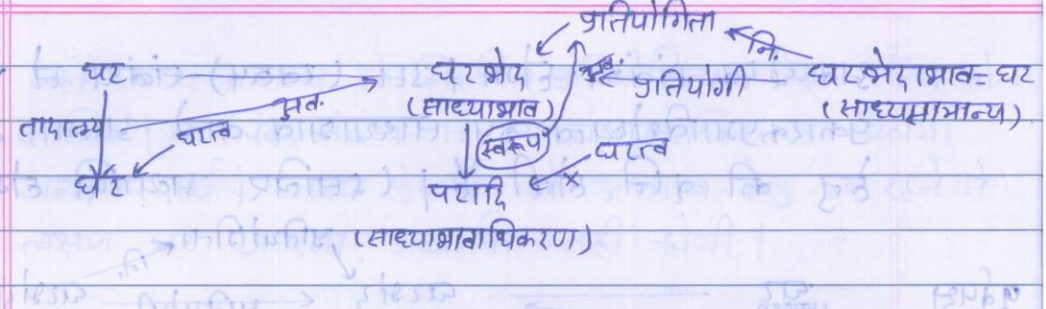


★ इस प्रकार अभी तक अभाव और भेद संबंधी तीन नियम आए -

① अभावाभाव = प्रतियोगी / सप्तम पदार्थ
भेदाभाव = प्रतियोगितावच्छेदक / सप्तम पदार्थ
② भेदाभावाभाव = प्रतियोगितावच्छेदकाभाव / भेद (प्रतियोगी)
③ भेदाभाव = प्रतियोगितावच्छेदक / प्रतियोगी

पूर्वपक्ष

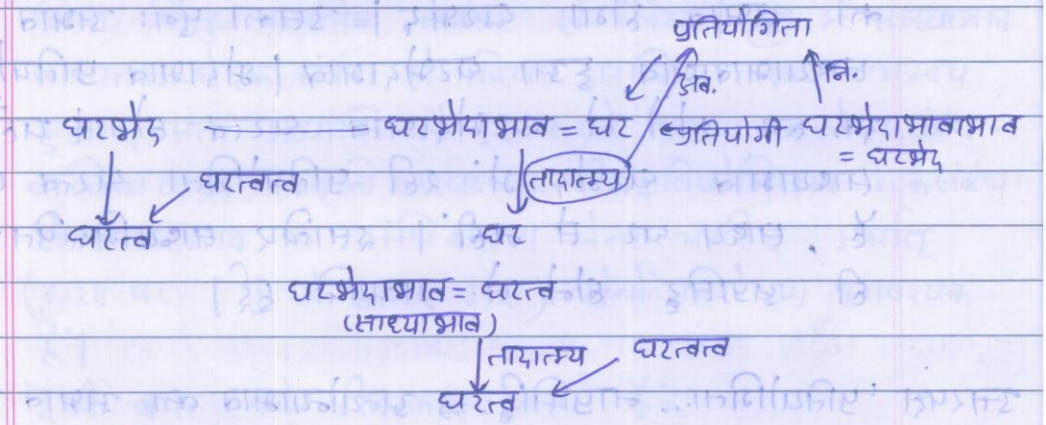


घटभेद साध्य, घटत्व पक्ष और घटत्वत्व हेतु होने पर अव्याप्ति होगी क्योंकि साध्यनिरूपित और साध्याभाव में रहने वाली प्रतियोगिता का अवच्छेदक संबंध तादात्म्य भी होगा और तादात्म्य संबंध से साध्याभाव घटभेदाभाव = घटत्व का अधिकरण घटत्व मिलेगा, उसमें घटत्वत्व हेतु होने से

अव्याप्ति होगी।

उत्तरपक्ष 'इत्थं च ... अवच्छेदकत्वात्' ⇒ साध्यसामान्यीय प्रतियोगिता का अत्यन्ताभावत्वनिरूपितत्व विशेषण त्याग देना चाहिए, जिससे उपर्युक्त अव्याप्ति न हो।

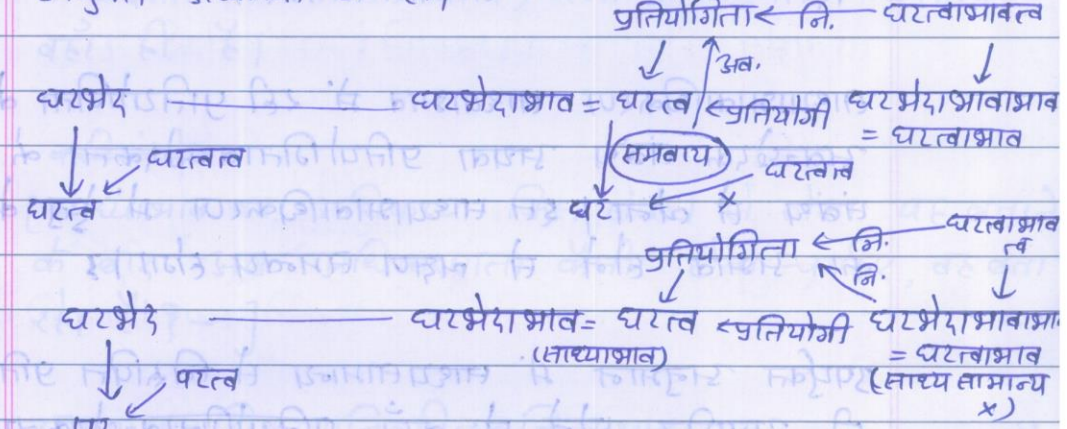


यहाँ तो साध्याभाव में रही हुई प्रतियोगिता साध्य से निरूपित नहीं है। इसलिए साध्य सामान्य से निरूपित साध्याभाववृत्ति प्रतियोगिता ही अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति हुई।

उत्तरपक्ष 'यद्वा ... विशेषणम्' ⇒ साध्याभाव का अधिकरण साध्यतावच्छेदक-संबंधावच्छिन्न साध्याभाववृत्ति-साध्यसामान्यीयनिरुक्तप्रतियोगित्व ~~अथवा~~ और (तद् = प्रतियोगित्व) प्रतियोगित्वावच्छेदकत्व में से अन्यतर के अवच्छेदक संबंध से ही विवक्षित करना। यहाँ वृत्ति तक के अन्त वाला वाक्य अन्यतर का विशेषण है। अर्थात् यहाँ चित्र ऐसा बनेगा –

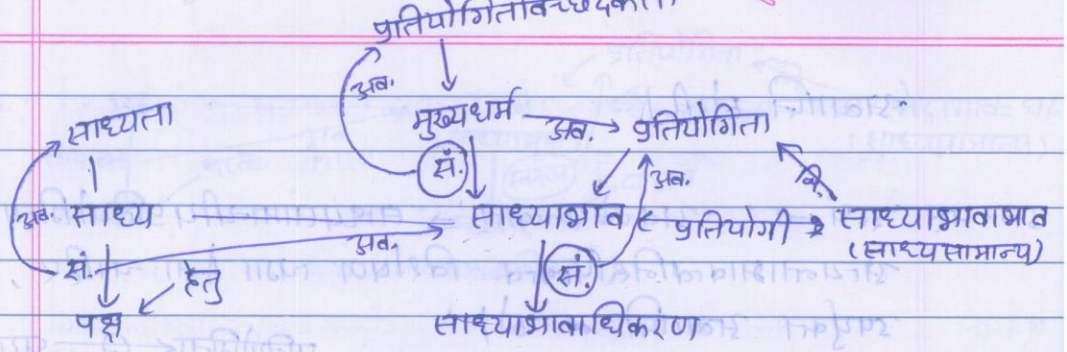


साध्याभावाधिकरण साध्याभाव में रही प्रतियोगिता के अवच्छेदक संबंध अथवा प्रतियोगितावच्छेदकता के अवच्छेदक संबंध से लेना। इस साध्याभावाधिकरण में हेतु के वृत्तित्व का अभाव होने से लक्षण समन्वय होगा।

उपर्युक्त अनुमान में साध्यसामान्य से निरूपित प्रतियोगिता ही अप्रसिद्ध होने से वहाँ प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदक संबंध से लक्षण घटाएँगे –

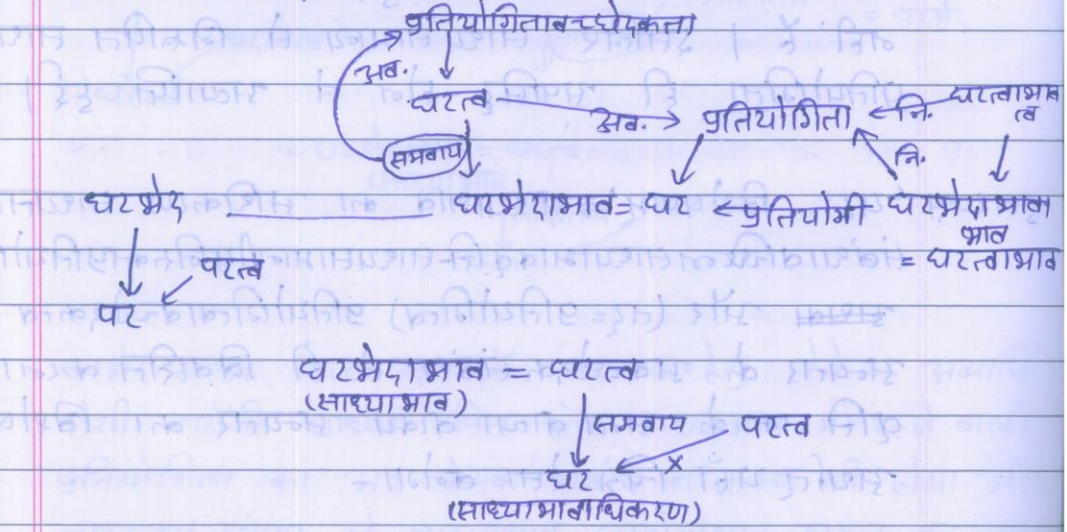

'एवं च ... सत्त्वात्' ⇒ ऐसा परिष्कार करने से घटभेदवान् पटत्वात् इत्यादि अनुमान में साध्याभाव घटत्वादि की साध्य-निरूपित प्रतियोगिता का अभाव होने पर भी क्षति नहीं है क्योंकि तादृश अन्यतर (प्रतियोगिता और प्रतियोगिता-वच्छेदकता में से अन्यतर) ऐसी प्रतियोगितावच्छेदकत्व वहाँ ही है।

~~पूर्वपक्ष~~ ~~कपिसंयोग~~

[साध्याभाव का अधिकरण किस संबंध से लेना, यह बताने के बाद अब अधिकरणता कैसी होना चाहिए, वह बता रहे हैं ! - ]

परिष्कार 5

साध्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तित्वाभाव

साध्याभाव की अधिकरणता कैसी लेना ?

पूर्वपक्ष

कपिसंयोग ——— कपिसंयोगाभाव

समवाय ↓ एतद्वृक्षत्व → एतद्वृक्ष

स्वरूप ↓ एतद्वृक्षत्व → एतद्वृक्ष (साध्याभावाधिकरण)

भाव साध्यक स्थल में तादृश प्रतियोगितावच्छेदक संबंध स्वरूप होगा। स्वरूप संबंध से साध्याभावाधिकरण एतद्वृक्ष भी मिलेगा। उसमें हेतु एतद्वृक्षत्व रहने से अव्याप्ति होगी। ऐसी अव्याप्ति प्रत्येक अव्याप्य वृत्ति साध्य वाले स्थल में होगी।

--[उपर्युक्त परिष्कार में "निरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपित विशेषण क्यों लगाया, वह बताते हैं -]

Classmate Date Page

उत्तरपक्ष 'न च ... वाच्यम्' ⇒ ऐसा आपको नहीं कहना चाहिए।

'निरुक्त... विवक्षितत्वात्' ⇒ उपर्युक्त संबंध से साध्याभाव की जो निरवच्छिन्न अधिकरणता है, उस अधिकरणता के आश्रय (साध्याभावाधिकरण) में हेतु की अवृत्तिता विवक्षित होने से (अव्याप्ति नहीं होगी)।

कपिसंयोग ——— कपिसंयोगाभाव
समवाय ↓ एतद्वृक्षत्व — नि. अधिकरणता ↓ स्वरूप → भूतत्वादि ← एतद्वृक्षत्व
एतद्वृक्ष (निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरण)

पूर्वपक्ष गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताभाव ——— गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता ⇒ शुद्धसत्ता
गुणत्व ↓ ↙ गुण — द्रव्य गुण कर्म (साध्याभावाधिकरण)

यहाँ गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ता साध्याभाव है। 'विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते' न्याय से विशिष्ट सत्ता शुद्ध सत्ता ही है। अतः साध्याभाव शुद्ध सत्ता का निरवच्छिन्न अधिकरण गुण भी होगा, उसमें गुणत्व हेतु रहने से अव्याप्ति हुई।

उत्तरपक्ष इसलिए ही उपर्युक्त परिष्कार में 'साध्याभावत्वविशिष्टनिरूपित विशेषण लगाया है। निरुक्तसाध्याभावत्व से विशिष्ट ऐसे साध्याभाव से निरूपित और निरुक्त संबंध वाली जो निरवच्छिन्न अधिकरणता है, उस अधिकरणता के

आश्रय (साध्याभावाधिकरण) में हेतु की अवृत्तिता लेना है। आकार ऐसा बनेगा –

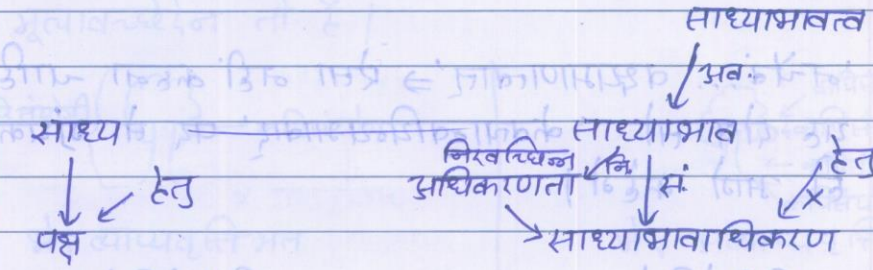


इससे लक्षण समन्वय इस तरह होगा –

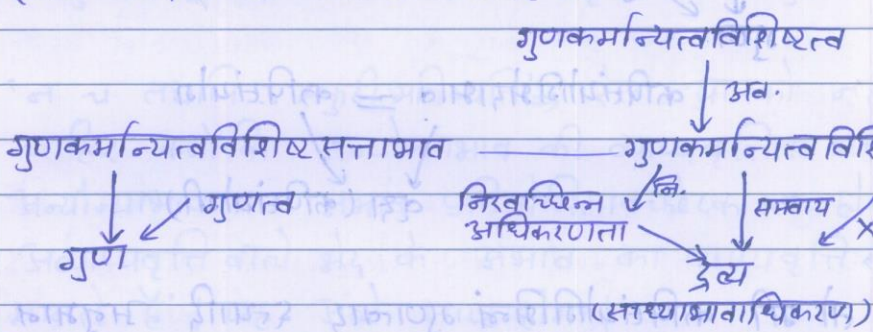


'गुणकर्मा... नाव्याप्तिः' ⇒ गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताभाववान् गुणत्वा इत्यादि अनुमान में (शुद्ध) सत्तात्मक साध्याभाव की अधिकरणता गुणादि में होने पर भी साध्याभावत्व से विशिष्ट से निरूपि अधिकरणता गुणादि में अवृत्ति होने से से अव्याप्ति नहीं होगी।

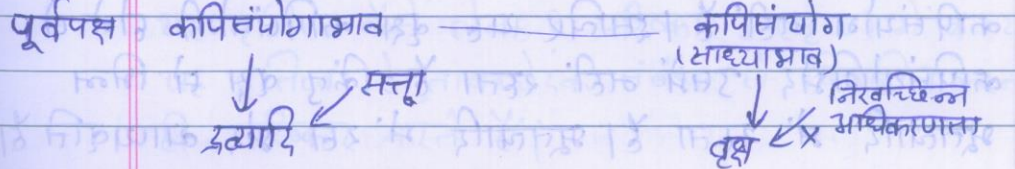

कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात् इत्यादि अनुमान में निरवच्छिन्न साध्याभावाधिकरणता ही अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति होगी

उत्तरपक्ष 'नचैवं ... वक्ष्यमाणत्वात्' ⇒ ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि यह दोष तो 'केवलान्वयिन्यभावात्' पद से ग्रंथकार स्वयं ही आगे कहेंगे।

पूर्वपक्ष कपिसंयोगिभेद ——— कपिसंयोगिभेदाभाव = कपिसंयोग

गुण ← गुणत्व

कपिसंयोगिभेदाभाव = कपिसंयोग

वृक्ष (कपिसंयोगी)

तो भी कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वात् इत्यादि अनुमान में अव्याप्ति होगी क्योंकि यहाँ तो साध्य कपिसंयोगिभेद केवलान्वयी नहीं है और साध्याभाव कपिसंयोगिभेदाभाव (= प्रतियोगितावच्छेदक कपिसंयोग) का निरवच्छिन्न अधिकरण अप्रसिद्ध है।

★ कुछ नैयायिक अन्योन्याभाव (भेद) को व्याप्यवृत्ति मानते हैं जैसे - वृक्ष में शाखावच्छेदेन कपिसंयोग है, मूलावच्छेदेन कपिसंयोग नहीं है। इसलिए यह वृक्ष कपिसंयोगी होने से कपिसंयोगिभेद उसमें नहीं रहता है किंतु वृक्ष से भिन्न भूतलादि में रहता है। भूतलादि में रहा भेद व्याप्यवृत्ति है।

कुछ नैयायिक भेद को अत्याप्यवृत्ति मानते हैं। इनके मत में कपिसंयोगिभेद वृक्ष में शाखावच्छेदेन नहीं है किंतु मूलावच्छेदेन तो है।

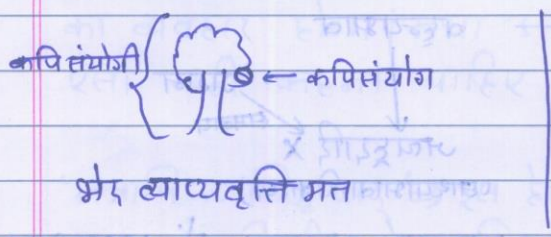


भेद व्याप्यवृत्ति मत

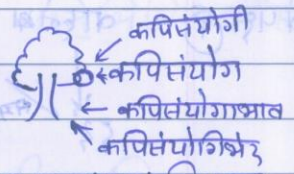


भेद अत्याप्यवृत्ति मत

उपर्युक्त पूर्वपक्ष भेद की व्याप्यवृत्ति मत अनुसार है।

उत्तरपक्ष 'न च तथापि... स्फुरीभविष्यति' ⇒ ऐसा आपको नहीं कहना चाहिए क्योंकि अन्योन्याभाव की व्याप्यवृत्तिता वाले मत में अन्योन्याभाव का अभाव प्रतियोगितावच्छेदक रूप होने पर भी अत्याप्यवृत्ति वाले भेद के अभाव का व्याप्यवृत्ति रूप अतिरिक्त मानते हैं। यह आगे स्पष्ट होगा।
(आगे यानि सिद्धान्तलक्षण में)

परिष्कार 6 [साध्याभाव की अधिकरण कैसी लेना, यह बताने के बाद अब साध्याभाववद्वृत्ति कैसे लेना? यह बताते हैं:- ]

साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वाभाव
↑

यह वृत्तित्व कैसे लेना? परिष्कार 2 (पृ.8) में बताया था यह वृत्तित्व हेतुतावच्छेदक संबंध से विवक्षित करना। उसमें ही परिष्कार करते हैं।

[पहले तीन जगह दोष बताएँगे, फिर परिष्कार कर तीनों दोषों का परिहार करेंगे]

पूर्वपक्ष ①

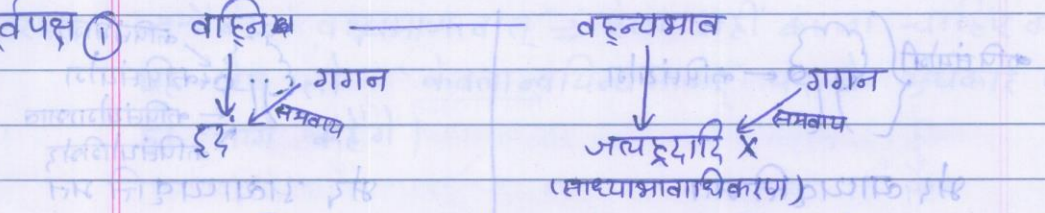


इदं वह्निमद्, समवायेन गगनाद् अनुमान में साध्याभाव होगा वह्न्यभाव, उसका अधिकरण जलह्रदादि में हेतुतावच्छेदक समवाय संबंध से हेतु की वृत्ति नहीं होने लक्षण घर गया, अतिव्याप्ति हो गई।

'ननु ... अवृत्तेः' ⇒ ऐसा होने पर भी (उपर्युक्त परिष्कार करने पर भी) समवायादि संबंध से गगनादि हेतु वाले 'इदं वह्निमद् गगनाद्' इत्यादि अनुमान में अतिव्याप्ति होगी क्योंकि वह्न्यभाववाले में हेतुतावच्छेदक समवायादि संबंध से गगनादि की अवृत्ति होती है।
(Actual में गगन समवाय संबंध से कहीं नहीं रहता, न तो साध्यवद् पक्ष में, न तो साध्याभाववद् में)

'न च तत्लक्ष्यमेव ... व्यवहार इति वाच्यम्' ⇒ यदि कोई ऐसा कहे कि वह तो लक्ष्य ही है अर्थात् उसे हेतु में वृत्तित्वाभाव रूप लक्षण जाना इष्ट ही है क्योंकि वह तो समवाय से कहीं भी वृत्ति नहीं होता।
प्र. यदि इसे इष्टापत्ति कहोगे तो इस गत्यंत हेतु को दुष्ट

कैसे बनाओगे?

उ. हेतुतावच्छेदक समवाय संबंध से इसमें पक्षधर्मता ही न होने से (स्वरूपासिद्धि दोष होने से) असद् हेतु का व्यवहार होगा। तथा असद् हेतु से अनुमिति नहीं होगी ऐसा नहीं कहना चाहिए - क्योंकि

'तत्रापि... सिद्धत्वाद्' ⇒ इस हेतु में भी यदि व्याप्ति का लक्षण जाएगा तो किसी को व्याप्ति के भ्रम से ही अनुमिति होव जाएगी, यह अनुभवसिद्ध है। इस कारण से इसमें व्याप्ति का लक्षण जाना और इसे लक्ष्य मानना इष्ट नहीं है।

'अन्यथा... सुवचत्वात्' ⇒ यदि इसे लक्ष्य ही मानो तो 'धूमवान् वह्नेः' इत्यादि अनुमान के हेतु को भी लक्ष्य कहना पड़ेगा किंतु वहाँ तो लक्ष्य न कहकर उसमें परिष्कार किया।

(2) ~~गुणकर्मान्यत्व~~ द्रव्यत्व ——— द्रव्यत्वाभाव

द्रव्यत्व ↓ इदं ← गुणकर्मान्यत्वविशिष्ट सत्ता

द्रव्यत्वाभाव ↓ गुणादि ← सत्ता

(साध्याभावाधिकरण)

'विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते' न्याय से गुणकर्मान्यत्व-विशिष्ट-सत्ता शुद्ध सत्ता ही है और शुद्ध सत्ता साध्याभाव द्रव्यत्वाभाव के अधिकरण गुणादि में रहती है।

'एवं द्रव्यं... सिद्धत्वात्' ⇒ इस प्रकार 'द्रव्यं गुणकर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वाद्' इत्यादि अनुमान में भी सव्याप्ति होती है क्योंकि विशिष्टसत्ता

* Pg. 46 पर देखें।

केवलसत्ता से अतिरिक्त नहीं होने से द्रव्यत्वाभाव वाले गुणादि में उसकी (सत्ता) वृत्ति है और 'गुण में गुणकर्मान्यत्व-विशिष्टसत्ता है' ऐसी प्रतीति सबको प्रसिद्ध है।

③ सत्ता ——— सत्ताभाव

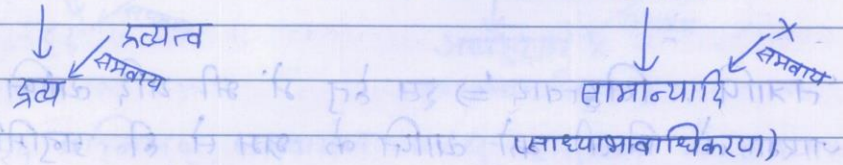


यहाँ साध्याभावाधिकरण सामान्यादि में समवाय संबंध से वृत्ति ही अप्रसिद्ध है इसलिए उस वृत्ति का अभाव हेतु में कैसे देखेंगे अतः अव्याप्ति होगी।

'सत्तावान्... अप्रसिद्धेरिति चेत्' ⇒ 'सत्तावान् द्रव्यत्वात्' इत्यादि में अव्याप्ति होगी क्योंकि सत्ताभाव वाले सामान्यादि में हेतुतावच्छेदक समवाय संबंध से वृत्ति अप्रसिद्ध है।

ऐसा यदि ~~आप~~ आप कहें (इति चेत्) तो -

उत्तरपक्ष 'हेतुता... विवक्षितत्वात्' ⇒ हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेत्वधिकरणता से निरूपित और हेतुतावच्छेदक संबंध से अवच्छिन्न आधेयता (वृत्तिता), ऐसी आधेयता प्रतियोगी है जिसमें ऐसा आधेयता - प्रतियोगिक स्वरूप संबंध से निरुक्त साध्याभावत्व-विशिष्ट से निरूपित और निरुक्त संबंध से ~~निरू~~ निरवच्छि अधिकरणता के आश्रय (साध्याभावाधिकरण) ~~में~~ में वृत्तित्वसामान्य का अभाव विवक्षित है। *↑
(हेतु में) निरूपित

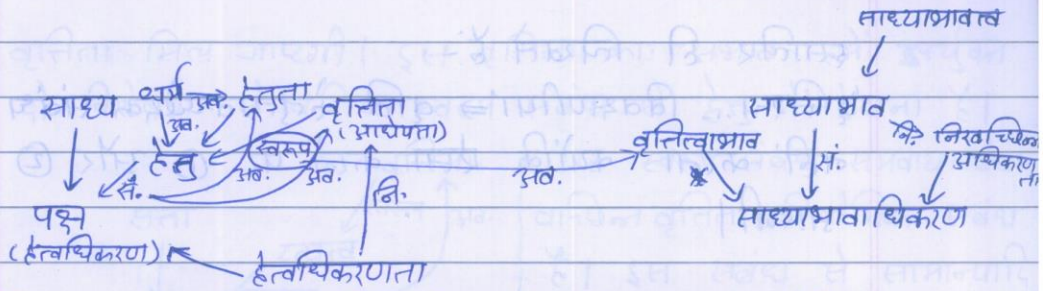


[~~अर्थात्~~ हेतु में रही हुई निरुक्त दो विशेषणों से विशिष्ट वृत्तित्व और साध्याभावाधिकरण में रही निरुक्त दो विशेषणों से विशिष्ट वृत्तित्व, दोनों वृत्तिता एक समान नहीं होना चाहिए]

पूर्वपक्ष में तीन आपत्ति देने का कारण –

① 'वह्निमद् गगनाद्' में हेतु हेतुतावच्छेदक समवाय संबंध से अवृत्ति होने से अतिव्याप्ति हुई।

② 'द्रव्यं विशिष्टसत्त्वात्' में विशिष्ट हेतु साध्याभाववद् में नहीं रहता किंतु विशेष्य हेतु साध्याभाववद् में रहने से अव्याप्ति हुई।

③ 'सत्तावान् द्रव्यत्वात्' में साध्याभावाधिकरण निरुक्त में हेतुतावच्छेद समवाय संबंध से वृत्तिता ही अप्रसिद्ध है, तो उस वृत्तिता का अभाव हेतु में न मिलने से अव्याप्ति हुई।

① और ② में हेतुतावच्छेदक संबंध से वृत्ति लेने पर आपत्ति आ रही थी इसलिए ग्रंथकार ने उसे बदलकर सीधे ही साध्याभाववद् से निरूपित वृत्तिता लेने को कहा ~~समवाय~~ किंतु हेतुतावच्छेदक संबंध भी लक्षण में डालना जरूरी है अन्यथा पृ. 8 पर बताए अनुसार आपत्ति आएगी। इसलिए उसके वारण के लिए हेतुतावच्छेदक संबंध सीधे न डालकर वृत्तितानिरूपितयोगिक स्वरूप संबंध में उसे डाल दिया।

इसलिए ही लिखते हैं-
'वृत्तिश्च... विवक्षणीया' ⇒ वृत्ति हेतुतावच्छेदक संबंध से विवक्षित नहीं करना क्योंकि ऐसा करने पर ① और ② आपत्ति आएगी।

पहले ③ में आपत्ति का वारण बताते हैं-

③ यहाँ हेतुतावच्छेदक समवाय संबंध से साध्याभाववद् सामान्य आदि में वृत्तिता ही न होने से आपत्ति आ रही थी। इसलिए हेतुतावच्छेदक संबंधावच्छिन्नवृत्ति लेने की जगह हेतुतावच्छेदक संबंधावच्छिन्न वृत्तिता प्रतियोगिक स्वरूप संबंध से साध्याभावाधिकरण में वृत्तिता लेना है -

*(पृ.५५ पर जोड़ें)

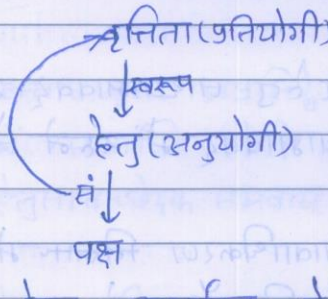


निरूपित का अभाव हेतु में

*अर्थात् पहले साध्याभाववद् में हेतुतावच्छेदक संबंध से वृत्तिता लेकर उसका अभाव हेतु में देख रहे थे, अब साध्याभाववद् निरूपित वृत्तिता लेकर उपर्युक्त दो विशेषण वाले स्वरूप संबंध से उसका अभाव हेतु में देखना है।]

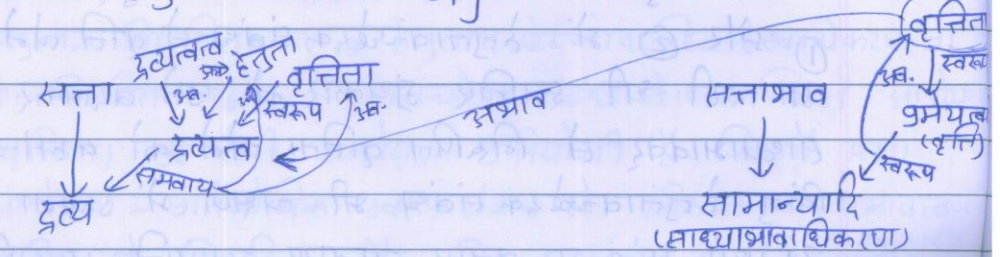


अब सामान्यादि में हेतुतावच्छेदक समवाय संबंध से तो वृत्तिता नहीं लेना है। इसलिए उसमें स्वरूप संबंधावच्छि

वृत्तिता मिल जाएगी। इस वृत्तिता का अभाव हमें उपर्युक्त दो विशेषण से विशिष्ट स्वरूप संबंध से हेतु में देखना है।

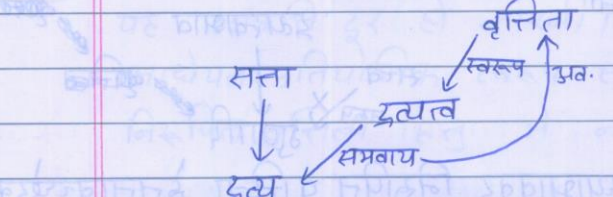


यह स्वरूप संबंध समवायसंबंधावच्छिन्न वृत्तितापतियोगिक संबंध है। इस संबंध से सामान्यादि साध्याभावाधिकरणनिरूपित वृत्तिता जगत् में कहीं भी नहीं रहती। अतः उस वृत्तिता का अभाव उपर्युक्त संबंध से हेतु द्रव्यत्व में भी मिल जाएगा और लक्षण समन्वय हो जाएगा।

इसी बात को कहते हैं—

'अस्ति... द्रव्यत्ववान्' ⇒ 'सत्तावान् द्रव्यत्वात्' इत्यादि अनुमान में हेतुतावच्छेदकसमवायसंबंधावच्छिन्नआधेयतापतियोगिक स्वरूप संबंध से सत्ताभाव की अधिकरणता वाले (सामान्यादि) से निरूपित वृत्तित्व सामान्य का अभाव द्रव्यत्वादि हेतु में है क्योंकि

'हेतुता... केवलान्वयित्वात्' ⇒ हेतुतावच्छेदकसमवायसंबंधावच्छिन्नआधेयतापतियोगिक स्वरूप संबंध से अवच्छिन्न प्रतियोगिता वाला साध्याभावाधिकरणतावद्वृत्तित्व का अभाव व्यधिकरण संबंध से अवच्छिन्न अभाव होने से संयोगसंबंधावच्छिन्न-गुणाभावादि की तरह केवलान्वयि है अर्थात् ~~हेतुता~~ साध्याभाववद् में निरूपित वृत्तित्व का हेतुतावच्छेदकसमवाय-संबंधावच्छिन्नाधेयतापतियोगिकस्वरूप संबंध से ~~अभाव~~ जगत् में कहीं नहीं रहता। इसलिए यह संबंध उस वृत्तित्व के लिए व्यधिकरण संबंध है। जगत् में यह अभाव ~~कहीं~~ न रहने से हेतु में भी रहेगा और लक्षण समन्वय हो जाएगा। सर्वत्र

[अब इस नए लक्षण में अतिव्याप्ति दोष बताकर उसका परिहार करते हैं -]

पूर्वपक्ष

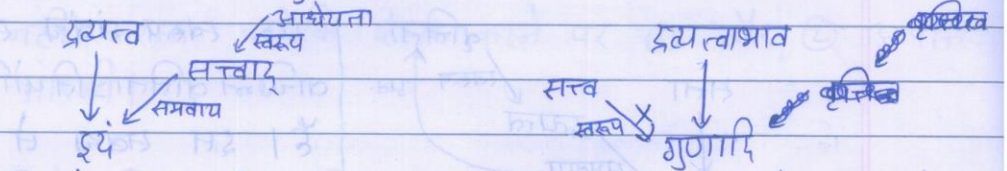


आपने कहा कि साध्याभाववद् निरूपित वृत्तिता हेतुतावच्छेदक संबंध से नहीं लेना। ऐसा करने पर तो अतिव्याप्ति होगी क्योंकि हेतु सत्त्व स्वरूप संबंध से साध्याभाववद् गुणादि में नहीं रहता। अतः वृत्तित्वाभाव पर जाने से लक्षण समन्वय हो जाएगा।

उत्तरपक्ष इस अतिव्याप्ति का दो तरह से वारण हो सकता है -

(i) वृत्तित्वसामान्य का अभाव लेना है किंतु आपने वृत्तित्वविशेष का अभाव लिया है। गुणादि में सत्ता समवाय संबंध से रहती होने से उसका वृत्तित्वसामान्याभाव गुणादि में नहीं मिलेगा।

(ii) हेतुतावच्छेदक संबंध को लक्षण में वृत्तित्व से नहीं जोड़ा है किंतु स्वरूप संबंध से जोड़ा है।

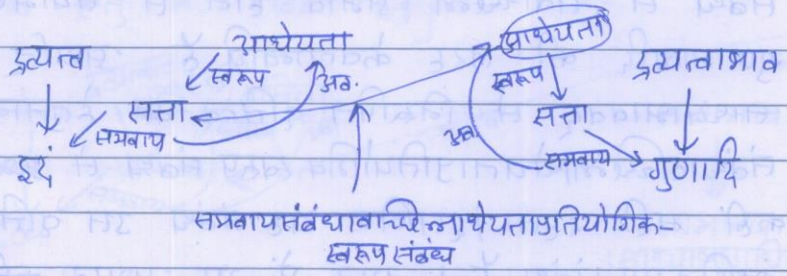


निरुक्त स्वरूप संबंध से गुणादि निरूपित वृत्तिता हेतु सत्ता में रहती ही है इसलिए अतिव्याप्ति नहीं होगी।

[अब ② में आपत्ति का वारण बताते हैं–]

② यहाँ हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न हेतु की अधिकरणता लेने से यह आपत्ति दूर हो जाएगी। इस अधिकरणता से निरूपित आधेयता प्रतियोगिक स्वरूप संबंध से साध्याभावावद् गुणादि निरूपित वृत्तिता हेतु में नहीं रहती –

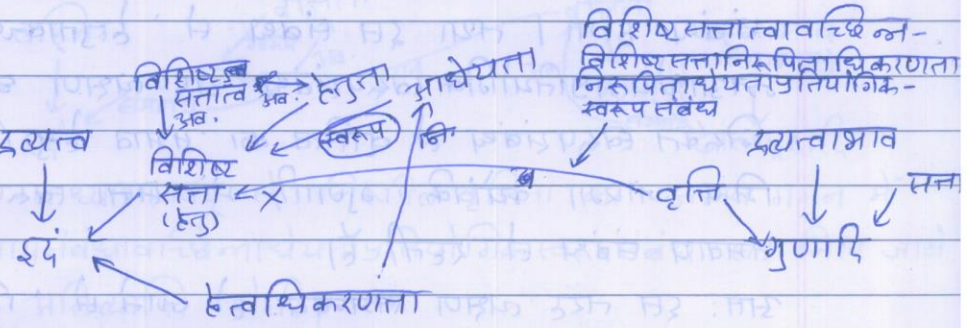


इसी बात को कहते हैं–

'द्रव्यं ... विशेषणम्' ⇒ 'द्रव्यं विशिष्टसत्त्वाद्' इत्यादि में अव्याप्ति के वारण के लिए परिष्कार में निरूपित अन्त वाला अर्थात् 'हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेत्वधिकरणतानिरूपित' ऐसा आधेयता का विशेषण दिया है।

[एक नई आपत्ति बताते हैं–]

पूर्वपक्ष 'वस्तुतः ... अनुपादेयमेव' ⇒ वस्तुतः तो यह लक्षण बनाने वाले के मत में विशिष्टसत्त्व विशिष्~~[illegible]~~निरूपिताधारता संबंध से ही द्रव्यत्व का व्याप्य है, समवाय संबंध से नहीं अर्थात् समवाय संबंध से तो सत्ता (शुद्ध सत्ता) द्रव्यादि में रहती है, विशिष्टसत्ता नहीं। इसलिए विशिष्टसत्ता को द्रव्य में रखने के लिए नया संबंध लेना पड़ेगा। वह संबंध होगा विशिष्टसत्ता~~प्रतियोगिक~~-निरूपिताधारता संबंध –

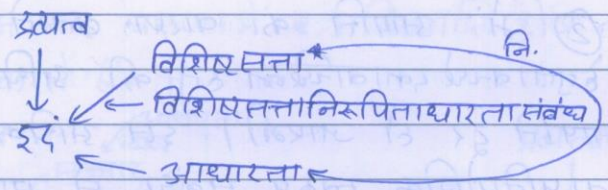


अब हेतुतावच्छेदक संबंध समवाय नहीं होगा किंतु यह नया संबंध होगा। तथा इस संबंध से 'हेतुतावच्छेदकसंबंधावच्छिन्नआधेयतापतियोगिक स्वरूपसंबंध' यह लक्षण घटाने पर निरुक्त स्वरूपसंबंध से वृत्तित्व का अभाव हेतु विशिष्ट सत्ता में मिल जाएगा क्योंकि गुणादि में सत्ता स्वरूप संबंध से नहीं समवाय संबंध से रहती है।

अतः इस तरह लक्षण समन्वय हो जाने से 'निरूपित' तक का ~~अवि~~ आधेयताविशेषण ग्रहण नहीं करना चाहिए।

'तदुपादाने... भेदापत्तेः' ⇒ उसके ग्रहण करने में हेतुतावच्छेदक का अत्यग-अत्यग अनुमिति में भेद होने से कार्य-कारण भाव भी बदल जाएँगे। इससे बहुत गौरव होगा।

~~[अब ① में दोष का निवारण बताते हैं—]~~

~~'हेतुत्व... नातिव्याप्तिः' ⇒ हेतुतावच्छेदक संबंध से संबंधी(वृत्ति) होते हुए भी इस~~

[इस प्रकार यह बताया कि लक्षण में हेतुतावच्छेदकधर्म का प्रवेश आवश्यक नहीं है। अब ① में ~~अतिव्याप्ति~~ अतिव्याप्ति का वारण करते हुए बताते हैं कि लक्षण में हेतुतावच्छेदक धर्म का प्रवेश भी आवश्यक है—]

उत्तरपक्ष यदि लक्षण में हेतुतावच्छेदक धर्म नहीं डालते तो मात्र हेतुतावच्छेदकसंबंधावच्छिन्नाधेयतापतियोगिक स्वरूप संबंध से साध्याभाववद् निरूपित वृत्तित्व का अभाव लेना पड़ेगा। ऐसा करने पर 'वह्निमद् गगनात्' में अतिव्याप्ति होगी-

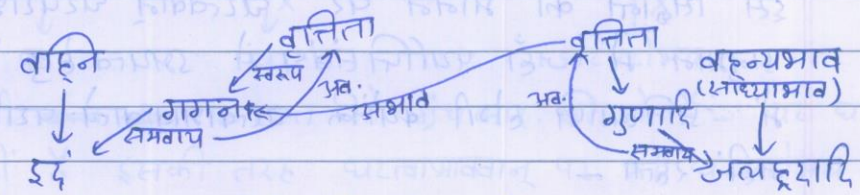


ऐसे साध्याभाववद् से निरूपित वृत्तिता का अभाव गगन में समवायसंबंधावच्छिन्नाधेयतापतियोगिक स्वरूपसंबंध से मिल जाने से अतिव्याप्ति होगी।

इसलिए यहाँ हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेत्वधिकरणतानिरूपिताधेयत्व -प्रतियोगिक स्वरूपसंबंध लेने से लक्षण समन्वय हो जाएगा -

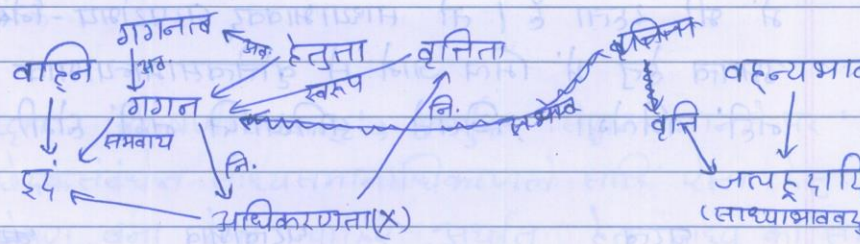


~~भगनत्वावच्छिन्नगगननिरूपिताधिकरणता~~

गगनत्वावच्छिन्नगगननिरूपिताधिकरणता ही अप्रसिद्ध होने से लक्षण नहीं घटेगा और अतिव्याप्ति नहीं होगी।

पूर्वपक्ष 'ननु... ~~इति चेत्~~ अवृत्तेः' ⇒ द्वित्व गुण दो वस्तु में ही पर्याप्ति संबंध से रहता है, ऐसे ही उभयत्व भी दो वस्तु में पर्याप्ति संबंध से

रहता है। उभयत्व दो में ही रहता है, एक में नहीं –

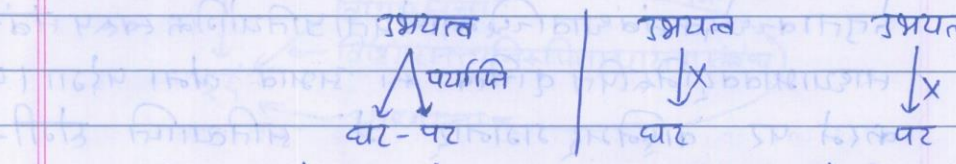


इस सिद्धान्त को मानने पर 'घटत्ववान् घटपटोभयत्वात्' इत्यादि अनुमान में जहाँ पर्याप्तिसंबंध से उभयत्व हेतु है, ऐसे अनुमा में अतिव्याप्ति होगी क्योंकि घटत्वाभाववत्ये पटादि में हेतु नहीं रहता –

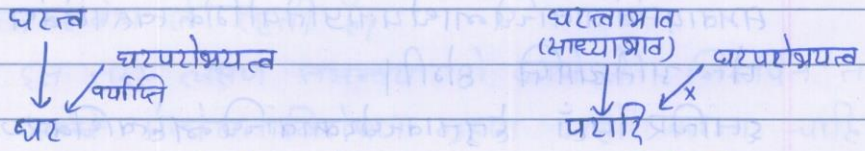


५. साध्याभाव घटत्वाभाव जैसे पटादि में रहता है, वैसे घटपटोभय में भी रहता है। तो साध्याभाववद् घटपटोभय-निरूपितवृत्तिता उभयत्व हेतु में मिल जाने से वृत्तित्वसामान्याभाव उभयत्व में नहीं मिलेगा, जिससे अतिव्याप्ति नहीं होगी –

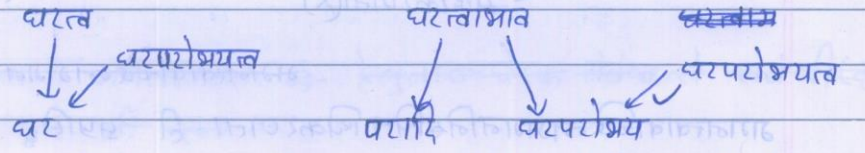


३. 'घटो न ... इति प्रतीतेः' ⇒ जैसे घट में घटत्व है, पट में नहीं है इसलिए घटपटोभय में घटत्व नहीं है; वैसे ही पट में घटत्वाभ है, घट में नहीं है इसलिए घटपटोभय में घटत्वाभाव भी नहीं है

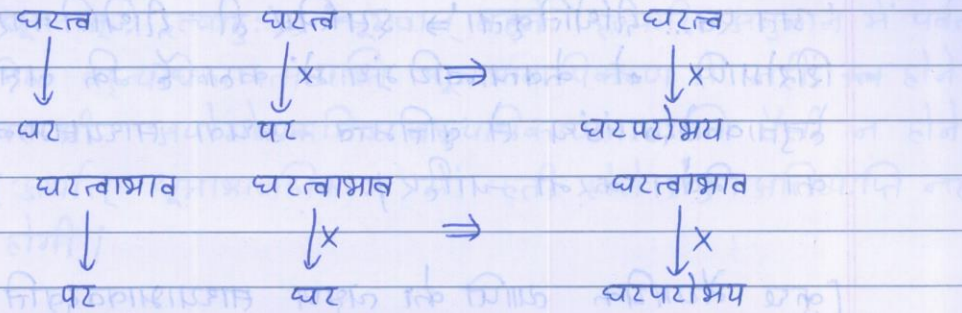


इसी ~~[illegible]~~ बात को ग्रंथकार बताते हैं– घट घटपटोभय नहीं है इसकी तरह घटत्वाभाववान् पट भी घटपटोभय नहीं है, ऐसी प्रतीति होती है।

अतः घटत्वाभाव (साध्याभाव) का अधिकरण ~~घट~~ घटपटोभय नहीं बनेगा और अतिव्याप्ति होगी ही है।

उत्तरपक्ष 'इति चेन्न' ⇒ यदि आप ऐसा कहते हैं, तो ऐसा नहीं है क्योंकि

'तादृश... विशेषणीयत्वात्' ⇒ उपर्युक्त सिद्धान्त मानने पर 'हेतुतावच्छेदकसंबंधेन साध्यसमानाधिकरणत्वे सति' ऐसा हेतु का विशेषण बना देना चाहिए अर्थात् हेतु साध्य का समानाधिकरण होना चाहिए। यहाँ घटपटोभयत्व हेतु साध्य घटत्व के समानाधिकरण नहीं है क्योंकि घटत्व घट में रहता है किंतु उभयत्व नहीं रहता है। अतः लक्षण उसमें नहीं घटेगा।

इसी परिष्कार से 'वह्निमद् समवायेन गगनात्' में भी अतिव्याप्ति दूर हो जाएगी।

'अत एव... दीधितिकृता' ⇒ इसलिए ही दीधितिकार रघुनाथ शिरोमणि ने केवलान्वयिग्रंथ में कहा है कि लक्षण में हेतुतावच्छेदकसंबंध से वृत्तिमत्त्व अथवा साध्यसमानाधिकरणत्व का निवेश करना चाहिए।

[कुछ नैयायिक व्याप्ति को लक्षण साध्याभाववदवृत्ति का कुछ अलग अर्थ करते हैं, उनका मत बताते हैं।]

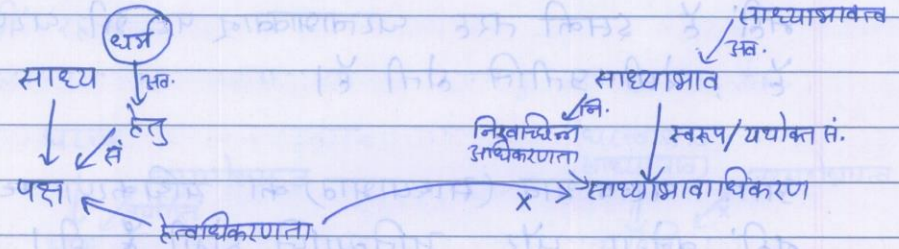


फिर 'केचित्तु... विवक्षितम्' ⇒ निरुक्त साध्याभावत्व से विशिष्ट ऐसे साध्याभाव से निरूपित ~~अधिक~~ तथा स्वरूप संबंध (यदि अभावाभाव को सप्तम पदार्थ मानो तो पृ. 15 पर उत्तरपक्ष की तरह) अथवा यथोक्तसंबंध (पृ. 17 पर उत्तरपक्ष की तरह) से जो निरवच्छिन्न ऐसी (साध्याभाव की) अधिकरणता है, उस अधिकरणता के आश्रय (साध्याभावाधिकरण) में हेतुतावच्छेदक संबंधावच्छिन्न और जिस धर्म से अवच्छिन्न (अर्थात् हेतु) से निरूपित आधिकरणतासामान्य (अर्थात् हेत्वधिकरणता) नहीं रहता हो (अवर्तमान), उस धर्म वाला होना व्याप्ति है (साध्याभाव-वदवृत्तित्व) है।

[यहाँ साध्याभावदवृत्तित्व यानि साध्याभाववद् में हेत्वधिकरणता का अवृत्तित्व है।]

[हेत्वधिकरणतासामान्य पद क्यों लिया? वह बताते हैं-]

'धूमवान्... इत्याहुः' ⇒ 'धूमवान् वह्नेः' इत्यादि अनुमान में पर्वतादि निष्ठ वह्न्यधिकरणतात्यक्ति धूमाभावाधिकरण में नहीं ~~रहने~~ होने पर भी अभीष्टोत्पत्ति निष्ठ वह्न्यधिकरणतात्यक्ति वैसी न होने से (अर्थात् धूमाभावाधिकरण में रहती होने से) अतिव्याप्ति नहीं होगी।

इस प्रकार कुछ नैयायिक कहते हैं।

[कुछ अन्य नैयायिक साध्याभाववदवृत्ति का अन्य अर्थ करते हैं, उनका मत बताते हैं- ]

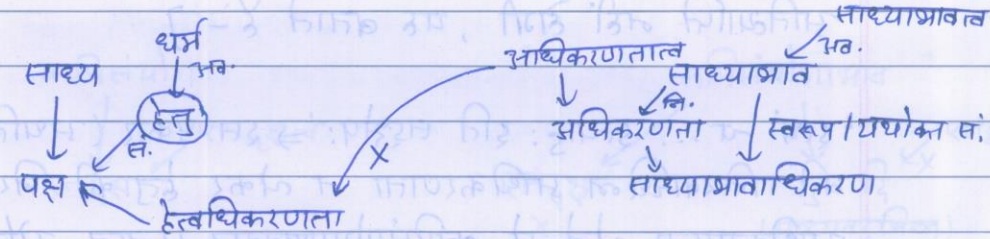


'अन्ये तु ... अधिकरणतात्वकत्वमिति' ⇒ (स्व = हेतु) हेतुतावच्छेदक-संबंधावच्छिन्न हेतुतावच्छेदकावच्छिन्न ऐसे स्व (हेतु) की अधिकरणता के आश्रय (हेत्वधिकरण) में रहने वाली जो निरवच्छिन्न हेत्वधिकरणता है, उस अधिकरणता में निरुक्त साध्याभावत्व से विशिष्ट साध्याभाव से निरूपित तथा यथोक्त संबंधावच्छिन्न अधिकरणतात्व नहीं रहता हो, ऐसा स्व (हेतु) में व्याप्ति है।

'विशेषण... तात्पर्यम्' ⇒ ~~इस~~ इससे पूर्व वाले अन्य मत में साध्याभाववद् में हेत्वधिकरणता का ~~असत्व~~ असत्त्व कहा, यहाँ हेत्वधिकरणता में साध्याभाववद् निरूपित अधिकरणतात्व का

अवृत्तित्व कहा, ऐसे यहाँ विशेषण-विशेष्य भाव का व्यत्यास करना ही ग्रंथकार का तात्पर्य है।

'स्वपदं हेतुपरम्' ⇒ उपर्युक्त लक्षण में 'स्व' पद 'हेतु' अर्थ में है।

[पूर्वोक्त अन्य मत में साध्याभाव से निरूपित निरवच्छिन्न अधिकरणता लेना थी। इससे कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात्, कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वात्' इत्यादि में कपिसंयोग की निरवच्छिन्नाधिकरणता अप्रसिद्ध होने से अव्याप्ति हो रही थी। इस मत में वह अतिव्याप्ति नहीं होगी, यह बताते हैं-]

'इत्थं च ... इत्याहुः इति संक्षेपः' ⇒ इस प्रकार (अर्थात् साध्याभाव की निरवच्छिन्न अधिकरणता न लेकर हेतु की निरवच्छिन्न अधिकरणता लेने से कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात् और कपिसंयोगिभिन्नं गुणत्वात् में अव्याप्ति नहीं होगी-

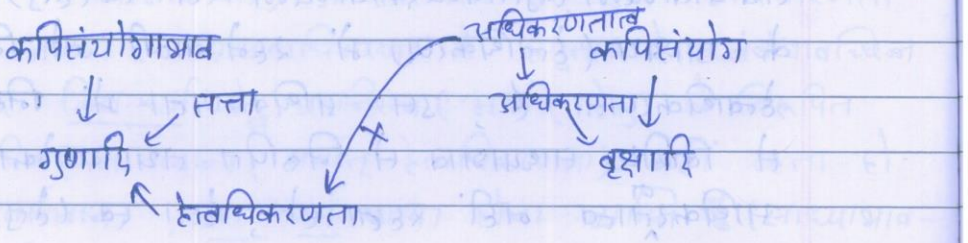


इस प्रकार कुछ अन्य नैयायिकों का मत है।

इस प्रकार संक्षेप में व्याप्ति का प्रथम लक्षण पूर्ण हुआ।

## द्वितीय लक्षण

साध्यवद्भिन्नसाध्याभाववद्वृत्तित्वम्
यह भी व्याप्ति नहीं है।

पूर्वपक्ष (प्राचीन मत) साध्यवद्भिन्न ऐसा जो साध्याभाववान् है उसमें अवृत्तित्व व्याप्ति है।

'कपि... प्राच्यः' ⇒ 'कपिसंयोगी एतद्वृक्षत्वात्' इत्यादि सव्याप्यवृत्ति साध्य वाले अनुमान में अव्याप्ति के वारण के लिए 'साध्यवद्भिन्न' साध्याभाववद् का विशेषण बनाया है –

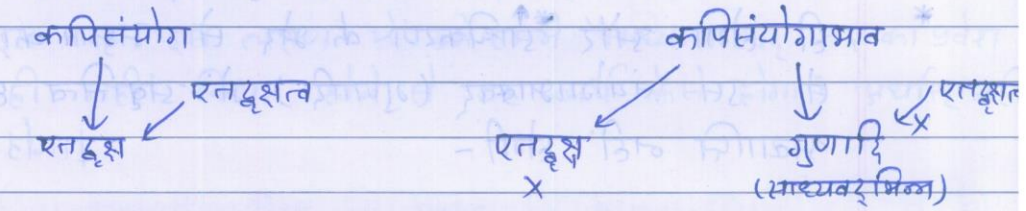


उत्तरपक्ष (नव्य मत) तदसत् - यह सही नहीं है।

'साध्याभाव... सम्यक्त्वात्' ⇒ यदि ऐसा मानेंगे तो 'साध्याभाववद्' पद की व्यर्थता की आपत्ति आएगी क्योंकि 'साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वम्' इतना कहने से ही वह अर्थ प्राप्त हो जाता।

'नव्यास्तु... इत्यर्थः' ⇒ साध्यवद्भिन्न में जो साध्याभाव है, उस साध्याभाववद् में अवृत्तित्व, इस प्रकार सप्तमीतत्पुरुष के बाद मतुप् प्रत्यय करते हैं –

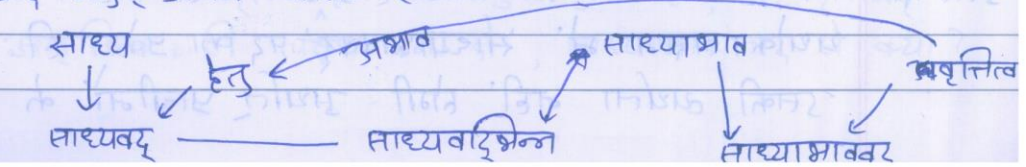

* Pg. 61 पर।

'एवं च... वृत्तेः' ⇒ यदि 'साध्यवद्भिन्नवृत्ति' ऐसा विशेषण नहीं लगाते तो 'संयोगी द्रव्यत्वात्' में अव्याप्ति होती क्योंकि संयोगाभाववाले द्रव्य में द्रव्यत्व की वृत्ति है –
(साध्यवद्भिन्नवृत्ति नहीं लगाते तो लक्षण मात्र साध्याभाववद्वृत्तित्व होता)

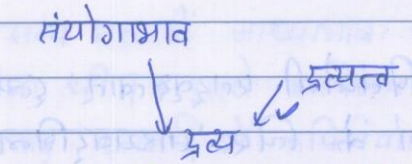


'तदुपादाने... अव्याप्तिः' ⇒ उस विशेषण के ग्रहण से संयोगवद् से भिन्न में वृत्ति संयोगाभाव गुणादि में रहा संयोगाभाव ही होगा और *उपाधिकरण के भेद से अभाव का भेद होने से उस संयोगाभाववद् (गुणादि) में अवृत्तित्व होने से अव्याप्ति नहीं होगी –

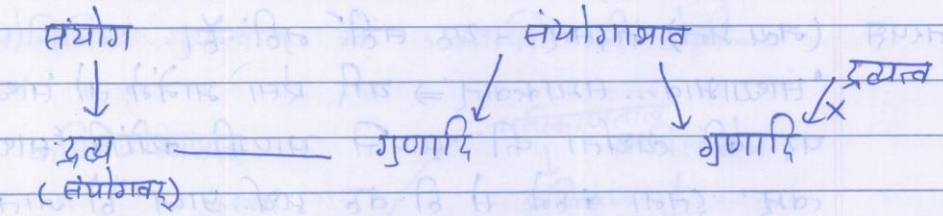


पूर्वपक्ष यदि 'साध्यवद्भिन्नावृत्ति' ~~अब~~ आवश्यक है तो उतना ही रखो, 'साध्याभाववद्' पद से क्या?

उत्तरपक्ष 'न च तथापि... वैयर्थ्यप्रसंगात्' ⇒ ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि यथोक्त लक्षण में 'साध्याभाववद्' पद का प्रवेश ही न होने से उसकी व्यर्थता नहीं होगी अर्थात् प्राचीनों के मत में

(संपूर्ण पद में)

साध्यवद्भिन्न ऐसा साध्याभाववद् लेना था इसलिए उसमें वृत्तित्व के अभाव का अन्वय हो रहा था। अतः वहाँ इस पद की व्यर्थता होती। किंतु यहाँ नव्य मत में तो साध्यवद्भिन्न ~~को~~ ~~वृत्तिमान~~ में वृत्ति साध्याभाव लेना है, फिर मतुप् प्रत्यय से साध्यवद्भिन्नवृत्तिसाध्याभाव का अन्वय अधिकरण में करना है, उस अधिकरण में हेतु की वृत्तिता का अभाव देखना है।

प्राचीन मत में 'साध्याभाववद्' पूरे पद का अन्वय साध्यवद्भिन्न के साथ था किंतु नव्य मत में 'साध्याभाव' का अन्वय साध्यवद्भिन्न में है, फिर उसका अधिकरण लेने से 'वद्' का अन्वय अत्यंत होता है।

इस तरह इस लक्षण में ~~हमने~~ हमने 'साध्याभाववद्' पद का प्रवेश ही नहीं किया होने से वह व्यर्थ कैसे होगा? अर्थात् नहीं होगा।

'तस्यापि लक्षणान्तरत्वात्' ⇒ और आप जो कह रहे हैं 'साध्यवद्भिन्नावृत्ति' वह भी अन्य (पाँचवां) लक्षण है।

~~पूर्वपक्ष~~ [इस लक्षण में कहा कि 'साध्याभाव' पद और 'वद्' पद का अन्वय अत्यंत है। अब 'साध्याभावो' पद नहीं लिखने पर होने वाली आपत्ति और उसका वारण बताते हैं-]

पूर्वपक्ष तथापि साध्यवद्भिन्न में जो कुछ वृत्ति हो, उस वृत्तिमद् में अवृत्तित्व ही लक्षण बना दो, साध्याभाव पद से क्या?

साध्य ↓ साध्यवद् —— साध्यवद्भिन्न ↓ वृत्तिमद् ← वृत्ति, अवृत्तित्व

उत्तरपक्ष 'न च ... असम्भवापत्तेः' ⇒ ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि तादृश द्रव्यत्वादिमद् में वृत्तित्व होने से असम्भव की आपत्ति होगी –

वह्नि ↓ पर्वत —— जलह्रदादि ← द्रव्यत्व; पर्वतादि ← धूम

कोई भी वृत्ति लेना हो तो हर अनुमान में द्रव्यत्वादि कोई-न-कोई वृत्ति के अधिकरण में हेतु रहता ही होगा इसलिए असम्भव दोष होगा।

पूर्वपक्ष तो 'साध्याभाव' पद रखने की क्या आवश्यकता है, केवल 'अभाव' पद रख दो, 'साध्य' पद की जरूरत नहीं है।

साध्य ↓ साध्यवद् —— साध्यवद्भिन्न ← अभाव; अभाववद् ← अवृत्तित्व

उत्तरपक्ष 'साध्याभाव... द्रव्यत्वाभावाभावत्वात्' ⇒ 'साध्याभाव' में 'साध्य' पद भी इसीलिए रखा है क्योंकि द्रव्यत्वादि भी द्रव्यत्वाभावाभाव आदि रूप होता है –

वह्नि ↓ पर्वत —— जलह्रदादि ← द्रव्यत्वाभावाभाव; पर्वतादि ← धूम

* (Pg. 58 पर) कुछ नैयायिक अधिकरण के भेद से अभाव का भी भेद मानते हैं - जैसे

वह्न्यभाव — जलह्रद
वह्न्यभाव — नदी
वह्न्यभाव — तडाग

इन तीनों में रहा हुआ वह्न्यभाव भिन्न है। जो वह्न्यभाव जलह्रद में, वह नदी में नहीं है। अत: जलह्रदनिष्ठवह्न्यभाव का अधिकरण जलह्रद ही होगा, नद्यादि नहीं।

पूर्वपक्ष अधिकरण के भेद से अभाव का भेद होने से यह नहीं चलेगा क्योंकि जो द्रव्यत्वाभावाभाव जलह्रदादि में रहता है, वह पर्वतादि में नहीं रहता। इसलिए -

वह्नि — पर्वत —— द्रव्यत्वाभावाभाव — जलह्रदादि
धूम — जलह्रदादि

उत्तरपक्ष 'भावरूपा... भेदाभावात्' ⇒ भावरूप अभाव का अधिकरण के भेद से अभाव नहीं होता। यह द्रव्यत्वाभावाभावादि द्वितीयादि अभाव भावरूप होने से इनका अधिकरण के भेद से भेद नहीं होता। इसलिए हमने जो बताया है, वैसे असंभव दोष ही होगा।
अत: लक्षण में 'साध्य' पद भी आवश्यक है।

* उभयाभाव और अन्यतराभाव में अंतर-

| | | उभयाभाव | अन्यतराभाव |
|---|---|---|---|
| A ✓ | B ✗ | ✓ | ✗ |
| A ✗ | B ✓ | ✓ | ✗ |
| A ✓ | B ✓ | ✗ | ✗ |
| A ✗ | B ✗ | ✓ | ✓ |

~~जहाँ~~ A और B दो वस्तु हैं। जहाँ दोनों हैं, वहाँ उभय है, शेष जगह उभयाभाव है। अन्यतर यानि दोनों में से एक। जहाँ A और B दोनों में से कोई एक है और जहाँ दोनों हैं, वहाँ अन्यतर है, अतः वहाँ अन्यतराभाव नहीं है। जहाँ A और B दोनों नहीं है, वहाँ अन्यतराभाव है।

पूर्वपक्ष 'ननु ... वृत्तेः' ⇒ तो भी 'घटत्वघटाकाशसंयोगान्यतराभाववान् गगनत्वात्' इत्यादि अनुमान में घट के अनधिकरण देश के अवच्छेद से घटाकाशसंयोगाभाव आकाश होने से सद्धेतु होने से अव्याप्ति होगी, क्योंकि साध्यवद्भिन्न ऐसे घट में रहना घटाकाशसंयोगघटत्वान्यतर रूप (अर्थात् घटाकाशसंयोग) साध्याभाव आकाश में भी होने से और उसमें हेतु की वृत्ति है।

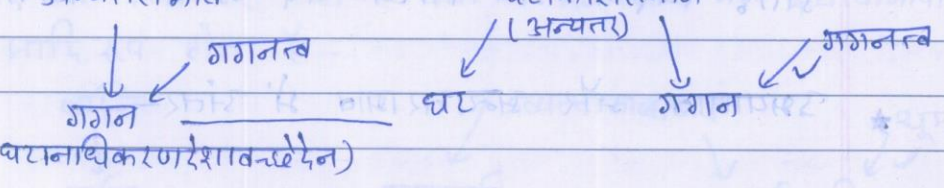

उत्तरपक्ष साध्यवद्भिन्नवृत्तिसाध्याभाव का अर्थ साध्यवद्भिन्नवृत्तित्व-विशिष्ट साध्याभाव करने से आपत्ति नहीं होगी क्योंकि घर में रहा घराकाशसंयोग आकाश में भी रहता है किंतु घर की वृत्तित्व से विशिष्ट संयोग का अधिकरण घर ही होगा, आकाश नहीं इसलिए अव्याप्ति नहीं होगी –

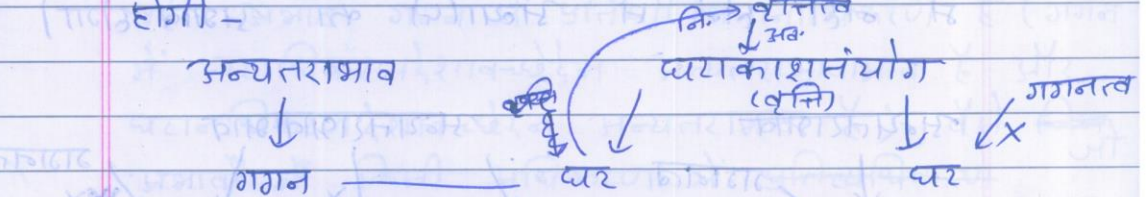


पूर्वपक्ष 'न च ... सम्यक्त्वात्' ⇒ ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि ऐसा मानने पर 'साध्याभाव' पद व्यर्थ होने की आपत्ति होगी क्योंकि 'साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टवद्वृत्तित्व' इतना लक्षण ही सम्यक् हो जाएगा। इतना लक्षण ही बराबर हो जाएगा क्योंकि साध्यवद्भिन्न की वृत्तित्व से विशिष्ट जो कुछ हो, उसका अधिकरण साध्यवद्भिन्न ही मिलेगा।

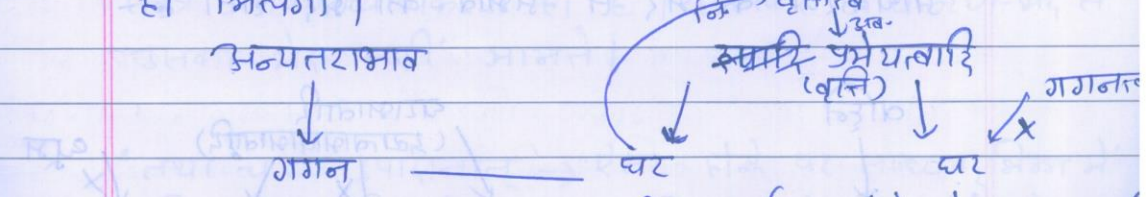


इस प्रकार 'साध्याभाव' पद की व्यर्थता होने से यह अर्थ बराबर नहीं है और अव्याप्ति होगी ही।

उत्तरपक्ष 'इति चेन्न' ⇒ यदि आप ऐसी आपत्ति देते हैं तो वह ठीक नहीं है क्योंकि –

'अभावाभावस्य ... ~~लक्षणकरणात्~~ अभावात्' ⇒ 'अभावाभाव को अतिरिक्त सातवाँ पदार्थ मानने वाले मत से यह लक्षण किया गया है तथा अधिकरण भेद से अभाव का भेद होने से साध्यवद्भिन्न ऐसे घर में वर्तने प्रतियोगिव्यधिकरण ऐसा साध्याभाव प्रतियोगी वाले गगन में नहीं होने से अव्याप्ति का अभाव होगा।

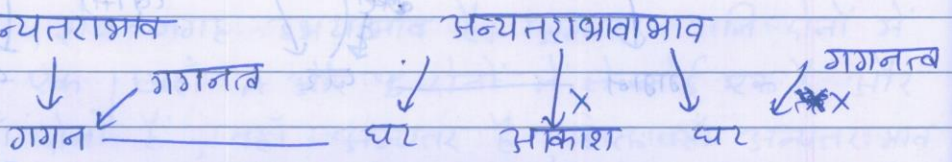


पूर्वपक्ष यदि ऐसा मानोगे तो 'साध्याभाव' में 'साध्य' पद व्यर्थ हो जाएगा क्योंकि अभावाभाव अतिरिक्त होने से द्रव्यत्वादि के अभावत्व का अभाव होगा (अर्थात् वह अभावाभाव रूप नहीं होगा, भाव रूप ही होगा) और साध्यवद्भिन्न में वृत्ति घटाभावादि हेतु के अधिकरण में नहीं होंगे क्योंकि अधिकरण के भेद से अभाव का भेद होता है -

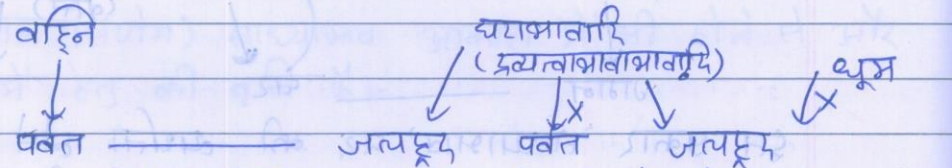


इस तरह भी व्याप्ति का लक्षण घट जाने से 'साध्य' पद व्यर्थ होगा।

उत्तरपक्ष "न चैवं ... वाच्यम्' ⇒ ऐसा नहीं कहना चाहिए।

★ (अधिकरण भेद से अभाव का भेद कहाँ मानना, उसका नियम -)

'यत्र... सर्वत्र' ⇒ जहाँ प्रतियोगी-व्यधिकरणत्व और प्रतियोगि-समानाधिकरणत्व रूप विरुद्ध धर्म रहे हों, वहीं अधिकरण के भेद से अभाव का भेद माना गया है, सब जगह नहीं। अर्थात् जैसे अन्यतराभावाभाव घर में प्रतियोगित्यधिकरण है (घर में अन्यतराभावाभाव रहता है, अन्यतराभाव नहीं) किंतु वही अभाव गगन में प्रतियोगिसमानाधिकरण है (गगन में घराधिकरणदेशावच्छेदेन अन्यतराभावाभाव है और घरानधिकरणदेशावच्छेदेन अन्यतराभाव है), वैसे ~~विरुद्ध~~ जो ~~अभावों में~~ किसी अधिकरण में ~~प्रतियोगित्यधिकरण~~ प्रतियोगित्यधिकरण हैं और कहीं प्रतियोगिसमानाधिकरण हैं, उन्हीं अभावों का अधिकरण-भेद से भेद स्वीकारा गया है क्योंकि एक ही अभाव में दो विरुद्ध धर्म नहीं रह सकते। अतः घर में रहा अन्यतराभावाभाव और गगन में रहा अन्यतराभावाभाव, दोनों अलग हैं।

द्रव्यत्वाभावाभाव ~~में घटाभावादि~~ में ऐसा नहीं है। द्रव्यत्वाभावाभाव सर्वत्र प्रतियोगित्यधिकरण ही है। इसलिए अधिकरण-भेद से उसका भेद नहीं मानते।

'तथा च... उपादानात्' ⇒ ऐसा होने पर साध्यवद्भिन्न में वृत्ति घराभावादि हेतु के अधिकरण में भी होने से ~~असंभव~~ दोष के वारण के लिए 'साध्य' पद का ग्रहण किया है -

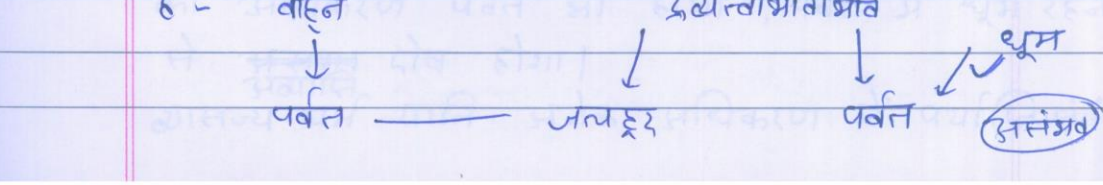

इस प्रकार हर अनुमिति कोई-न-कोई ऐसा अभाव मिल ही जाएगा और व्याप्ति का लक्षण नहीं घटेगा, इससे असंभव दोष होगा। इस असंभव के वारण के लिए 'साध्य' पद त्यागना पड़ेगा - 'साध्यवद्भिन्नवृत्ति साध्याभाववद्वृत्तित्व' -

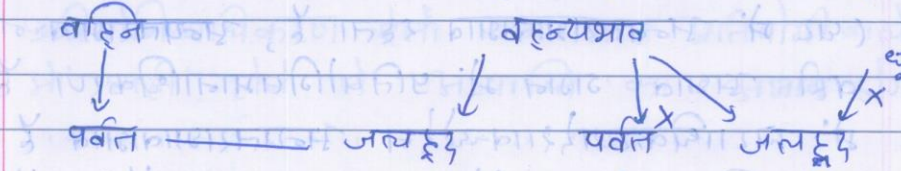


★ ~~चक्र~~ [ अभावाभाव को प्रतियोगी रूप कहाँ मानना और अतिरिक्त कहाँ मानना, इसका नियम - ]

'यद्वा ... अनुगतत्वात्' ⇒ 'अथवा घटत्वघटाकाशसंयोगान्यतराभाव अतिरिक्त ही है क्योंकि वह घटत्वघटाकाशसंयोगादि के अभाव अनुगत न होने से उसे वैसा (प्रतियोगी रूप) नहीं कहा जा सकता। घटत्व, द्रव्यत्वादि के अभावाभाव तो अतिरिक्त नहीं हैं क्योंकि वे घटत्व-द्रव्यत्वादि के अनुगत है)

'तथा च ... विस्तरः' ⇒ ऐसा होने पर द्रव्यत्वादि का ग्रहण करने से होने वाले असंभव के वारण के लिए ही 'साध्य' पद का ग्रहण किया है (असंभव दोष पृ. ६० पर दर्शाए प्रथम उत्तरपक्ष की तरह और उसका वारण ~~उस~~ इसी पृ. ६६ पर ऊपर दर्शाए चित्र की तरह)।

तृतीय लक्षण -पं. श्री अयन भट्टाचार्य

साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावासामानाधिकरण्यम् ।

यह भी व्याप्ति नहीं है।

साध्यवत् है प्रतियोगी जिसमें, ऐसा अन्योन्याभाव का सामानाधिकरण्य हेतु में नहीं होना अर्थात् साध्यवत् के भेद के अधिकरण में निरूपित वृत्तित्वाभाव –

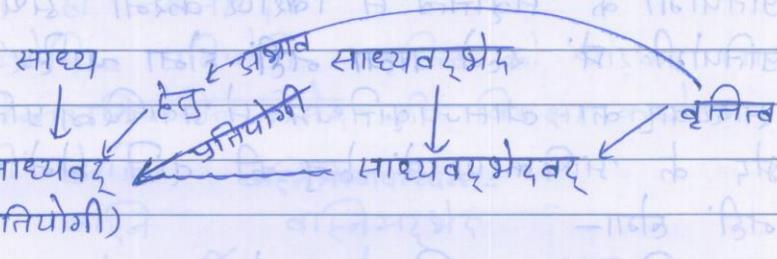


पूर्वपक्ष

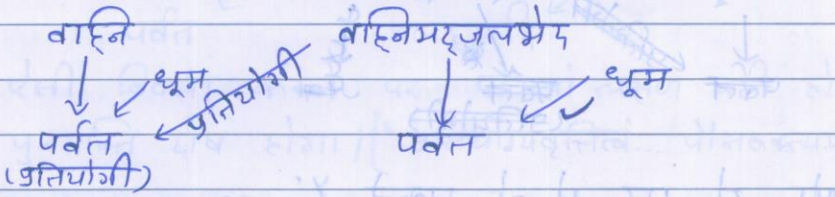


यहाँ पर्वत वह्निमद् है। पर्वत जलनहीं है, पृथ्वी है। अतः पर्वत वह्निमद् है, जल नहीं है इस प्रकार 'एकसत्त्वे ऽपि ह्यं नास्तीति प्रतीतेः' न्याय से पर्वत में वह्निमद्-जलउभय का भेद है। इस भेद का प्रतियोगी वह्निमद् भी है इसलिए यह वह्निमत्प्रतियोगिक भेद हो गया। इस भेद का अधिकरण पर्वत भी होगा, पर्वत में धूम रहने से ~~असंभव~~ अत्याप्ति दोष होगा।

व्यासज्य धर्म यानि अनेक अधिकरण में पर्याप्ति संबंध

से रहने वाले धर्म जैसे- द्वित्व, उभयत्वादि। ऐसे व्यासज्यवृत्ति धर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिता वाला भेद तो ~~हर~~ हर अनुमिति के पक्ष में मिल जाएगा। अतः हर अनुमिति में अव्याप्ति होने से वह असंभव दोष बन जाएगा।

उत्तरपक्ष – 'अन्योन्याभावश्च ... मासम्भवः' ⇒ यहाँ लक्षण में भेद को प्रतियोगी के अवृत्तित्व से विशेष करना अर्थात् भेद उसके प्रतियोगी में रहने वाला नहीं होना चाहिए। इससे साध्यवत् का व्यासज्यवृत्तिधर्म से अवच्छिन्न प्रतियोगिता वाले भेद के अधिकरण में हेतु की वृत्ति होने पर भी असंभव नहीं होगा–

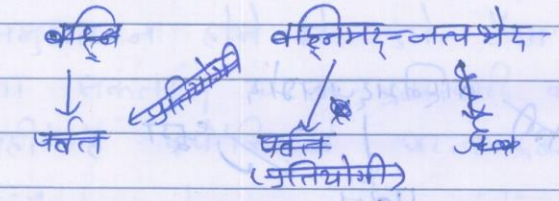


भेद दो तरह से ले सकते हैं eg.

वह्नि  वह्निमद्-जलभेद

↓  ① प्रतियोगी

पर्वत ← ② प्रतियोगी वह्निमद् भेद

इनमें से ① भेद प्रतियोगी में वृत्ति है अर्थात् प्रतियोगी में रहता है किंतु ② नहीं रहता इसलिए वही ले सकते हैं-

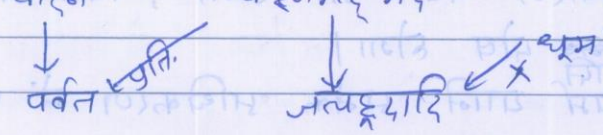

तदत्यन्ताभावावच्छिन्न-

पूर्वपक्ष वह्नि वह्निमद्भेद

↓ प्रति. ↓ धूम

पर्वत महानस जहाँ साध्य के

'ननु ... दुर्वारा' ⇒ ऐसा होने पर भी अनेक अधिकरण हो ऐसे 'वह्निमान् धूमात्' इत्यादि अनुमान में साध्य के अधिकरण रूप तत्तदत्यन्ताभावावच्छिन्नप्रतियोगिताक भेद वाले में हेतु की वृत्ति होने से अव्याप्ति का वारण नहीं हो सकता।

उत्तरपक्ष ~~प्रतियोगि~~ प्रतियोगि- अवृत्तित्व को छोड़कर साध्यवत्तावा-च्छिन्नप्रतियोगिताकभेद की विवक्षा करने पर अव्याप्ति नहीं होगी- वह्निमत्तावच्छिन्न-

वह्नि वह्निमद्भेद

↓ प्रति. ↓ धूम

पर्वत जलह्रदादि X

पूर्वपक्ष ऐसी विवक्षा करने पर पाँचवां लक्षण यही होने से पुनरुक्ति दोष होगा। ['प्रतियोग्यवृत्तित्वं... पौनरुक्त्यम्']

उत्तरपक्ष 'इति चेन्न' ⇒ ऐसा नहीं है।

'वक्ष्यमाण... दोषत्वात्' ⇒ आगे कही जाने वाली केवलान्वयि में अव्याप्ति की तरह यहाँ यह भी दोष है। इसे ग्रंथकार स्वयं ही आगे कहेंगे।

[प्र. यदि ग्रंथकार को दोष स्वीकारना ही था तो ऊपर 'इति चेन्न' में 'न' क्यों लिखा? 'न' लिखने की आवश्यकता

नहीं थी। अथवा 'न' लिखा तो उससे किसका निषेध किया। अव्याप्ति स्वीकारने से दोष का निषेध तो किया ही नहीं।

3. 'न' से दो निषेध होते हैं -

① ~~ग्रंथ~~ पूर्वपक्ष द्वारा बताए दोष का निषेध।

② पूर्वपक्ष द्वारा दोष बताने के काल का निषेध।

यहाँ दोष का निषेध नहीं है क्योंकि दोष तो ग्रंथकार ने स्वीकारा ही है। यहाँ काल का निषेध है अर्थात् उत्तरपक्ष वाले पूर्वपक्ष को 'न' से कहते हैं कि यह अव्याप्ति दोष बताने का यह क उचित काल नहीं है। उसका उचित काल ग्रंथ के अंत में आएगा, तब हम खुद ही यह दोष कहेंगे।]

[यह सिद्ध हुआ कि यहाँ साध्यवद्प्रतियोगिकभेद साध्यवत्त्वावच्छिन्न नहीं ले सकते, तद्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्न ही लेना पड़ेगा। अब इसमें आगे -]

पूर्वपक्ष यहाँ लक्षण में साध्यवत्त्वावच्छिन्न साध्यवत्प्रतियोगिक भेद नहीं ले सकते इसलिए तद्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्न भेद ही लेना पड़ेगा। ऐसा भेद लेने पर आप क जो केवलान्वयि में अव्याप्ति बताने वाले हो, वह असंगत है क्योंकि केवलान्वयि में साध्यवत्त्वावच्छिन्न भेद लेने पर ही अव्याप्ति आती है -

eg. इदं वाच्यं प्रमेयत्वात्

वाच्यत्व  वाच्यत्ववद्भेद

↓  ↓

घटादि ~~वृत्ति~~  X

यदि व्यक्तित्वावच्छिन्न भेद लेंगे तो इस भेद का अधिकरण प्रसिद्ध होने से अव्याप्ति नहीं होगी –

वाच्यत्व  वाच्यत्ववद्भेद
↓ ज्ञाति  ↓
घट  (पटादि)

इसलिए केवलान्वयि में अव्याप्ति असंगत है।

उत्तरपक्ष 'न च... वाच्यम्' ⇒ तो भी साध्यवत्प्रतियोगिकभेदमात्र ही इस लक्षण का घटक होने से आगे बताई जाने वाली केवलान्वयि- अव्याप्ति यहाँ असंगत होगी क्योंकि केवलान्वयि साध्य वाले अनुमान में भी साध्याधिकरण रूप तत्तत् ~~व्यक्तित्व~~ व्यक्तित्वावच्छिन्नभेद भी प्रसिद्ध ~~होने से~~ है, ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि –

केवलान्वयि साध्यक स्थल में व्यक्तित्वावच्छिन्न भेद लेने पर भी

'तत्राऽपि... दुर्वारत्वात्' ⇒ वहाँ भी अर्थात् ~~केवल~~ ~~अधिकरण में~~ ~~भी~~ तादृश भेद प्रसिद्ध होने पर भी उसके अधिकरण में हेतु की वृत्ति ही होने से अव्याप्ति का वारण नहीं होगा –

वाच्यत्व  वाच्यत्ववद्भेद
↓ ज्ञाति  ↓  प्रमेयत्व
घट  (पटादि)

'पक्षे... विवक्षितः' ⇒ अथवा 'साध्यवत्प्रतियोगिकभेद' पद से यहाँ 'साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद' ही विवक्षित है।
(पूर्वपक्ष- तो इसका पाँचवें लक्षण से अभेद हो जाएगा)

'न चैवं... अधिकरणत्वेनेति' ⇒ ऐसा अर्थ करने पर पाँचवें लक्षण से अभेद नहीं होगा क्योंकि वहाँ साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिता भेदवत् ~~[illegible]~~ है और यहाँ तादृश भेद का अधिकरण है अर्थात् वहाँ साध्यवत्त्वावच्छिन्न भेद वत् ~~[illegible]~~ लेना है और यहाँ साध्यवत्त्वावच्छिन्नभेद का अधिकरण लेना है।

'इति ~~अधि~~ भेदात्' ⇒ इस प्रकार 'साधिकरण' अंश के लक्षण में प्रवेश और अप्रवेश से ही दोनों लक्षणों (तीसरे और पाँचवें) में भेद है।

प्र. किंतु वत् और अधिकरण में क्या भेद है?

उ. वत् व्यापक है, अधिकरण व्याप्य है। दोनों संबंध अर्थ में ~~[illegible]~~ हैं किंतु वत् वृत्तिनियामक और वृत्त्यनियामक, दोनों संबंध में होता है और अधिकरण सिर्फ वृत्तिनियामक संबंध में ही कहा जाता है। eg. धन भाजन में है तो भाजन भी धनवान् कहा जाएगा और धन के स्वामी को भी धनवान् कहा जाएगा किंतु यहाँ अधिकरण भाजन को ही कहा जाएगा, ~~[illegible]~~ स्वामी को नहीं।
दंड हाथ में उठा रखा हो तब भी दंडी कहा जाएगा और दंड को हाथ से मात्र स्पर्श किया हो तब भी दंडी कहा जाएगा किंतु अधिकरण जब दंड हाथ में उठा रखा हो तभी कहा जाएगा।

पूर्वपक्ष 'अधिकरण का अर्थ भी 'अधिकरणतावद्' होता है इसलिए इसमें भी 'वत्' आ जाने से 'अधिकरणता' अंश व्यर्थ है।

अधिकरण न लिखकर 'वत्' ही लिख देते।

उत्तरपक्ष 'अखण्डाभाव... दोषः' ⇒ अखंडाभाव का अंश होने से यहाँ अधिकरणत्व अंश की व्यर्थता नहीं है अर्थात् तृतीय लक्षण में अन्योन्याभाव के साथ असामानाधिकरण्य रूप अभाव देखना है, यहाँ दो अभाव का संबंध ~~से~~ होने से परस्पर संबंध रूप एक अखंडाभाव है। इस अखंडाभाव का अंश होने से अधिकरणता यहाँ व्यर्थ नहीं है।
पाँचवें लक्षण में दो अभावों का संबंध नहीं है क्योंकि 'साध्यवद्-अन्योन्याभाववद्' यहाँ एक अभाव पूरा हो जाता है फिर इसमें 'अवृत्तित्व' रूप दूसरा अभाव लेना होता है। अतः यहाँ अखंडाभाव नहीं है।
इस प्रकार यहाँ दोष नहीं है।

चतुर्थ लक्षण
सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वम्।
यह भी व्याप्ति नहीं है।

'साकल्यं... विशेषणम्' ⇒ सकल साध्याभाववद् का विशेषण है।

[इससे अर्थ यह होगा-]
'तथा च... इत्यर्थः' ⇒ जितने साध्याभावाधिकरण हैं, उनमें रहे अभाव का प्रतियोगित्व हेतु की व्याप्ति है।

~~साध्य~~ ——— ~~साध्याभाव~~ ~~अभाव → प्रतियो~~

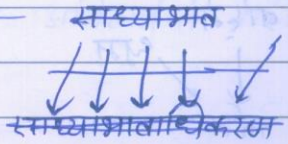

~~साध्याभावाधिकरण~~

classmate
Date
Page

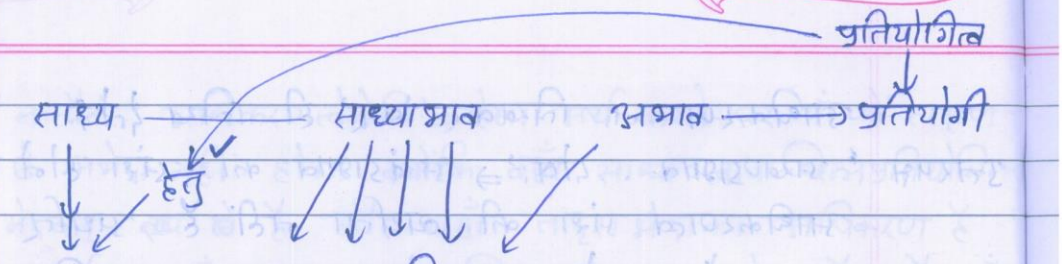


पूर्वपक्ष

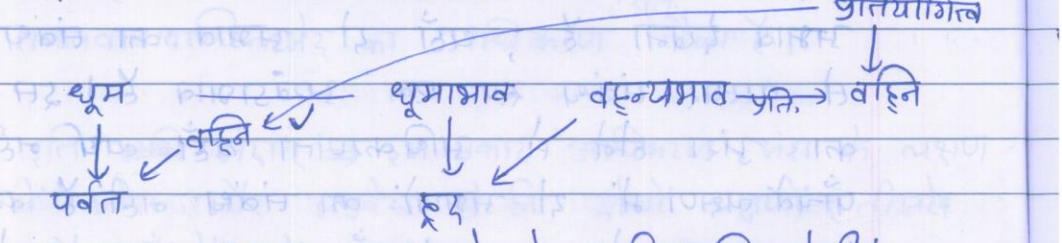


इस प्रकार लक्षण घट जाने से अतिव्याप्ति होगी।

उत्तरपक्ष 'धूमादि... विशेषणम्' ⇒ इसीलिए साध्याभाववद् का 'यावत्' विशेषण दिया है -

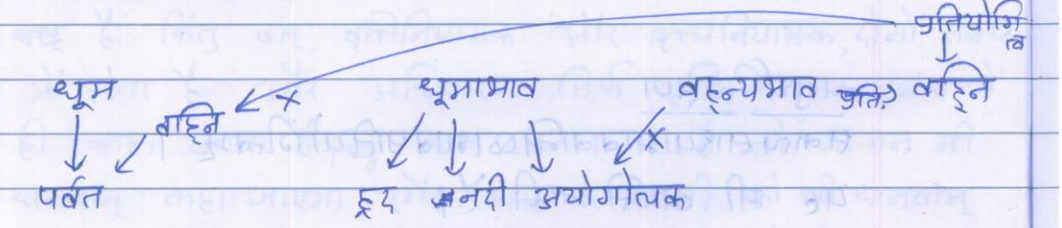


पूर्वपक्ष सकल को साध्याभाव का विशेषण बना दो तो?

उत्तरपक्ष यदि साध्याभाव का विशेषण बनाते तो साध्याभाव सभी लेना पड़ते और उन सभी का अधिकरण एक ही लेना पड़ता। जैसे -

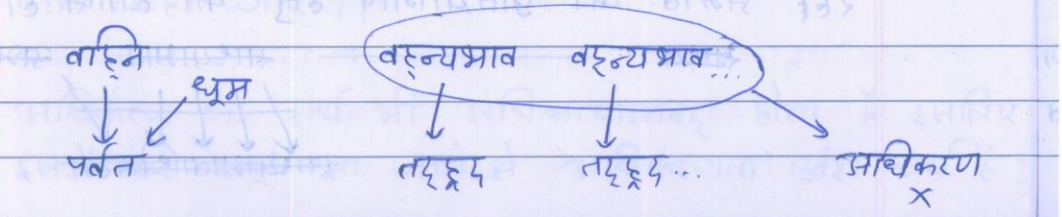

यहाँ सभी वह्न्यभाव का एक ही अधिकरण उपस्थित होने से असम्भव की आपत्ति होगी। यही बात कहते हैं-
'साध्याभाव... आपत्तेः'।

पूर्वपक्ष

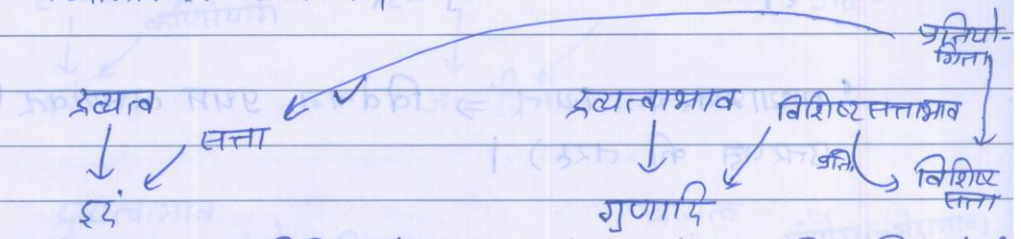


'विशिष्टं शुद्धान्नातिरिच्यते' न्याय से यहाँ अतिव्याप्ति होगी।

उत्तरपक्ष 'न च... वाच्यम्' ⇒ ऐसा नहीं कह सकते क्योंकि-
'तादृश... विवक्षितत्वात्' ⇒ तादृश अभाव का प्रतियोगितावच्छेदक ही हेतुतावच्छेदक होना चाहिए-

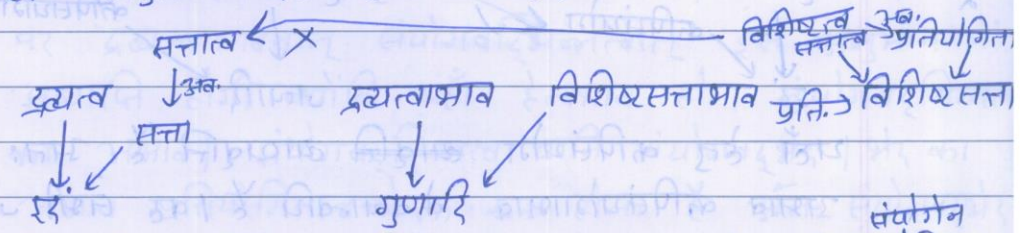


पूर्वपक्ष

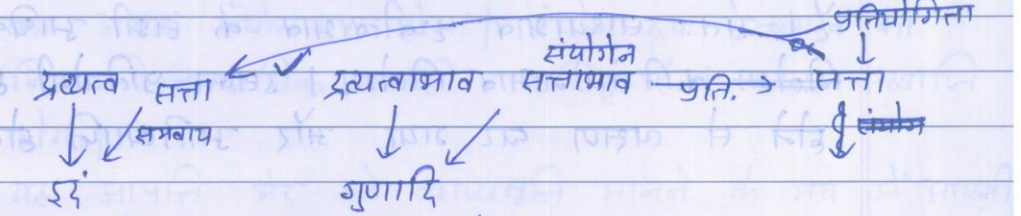


इस प्रकार अतिव्याप्ति होगी।

उत्तरपक्ष 'प्रतियोगिता... नातिव्याप्तिः' ⇒ प्रतियोगिता हेतुतावच्छेदक संबंध से विवक्षित करने से उपर्युक्त अतिव्याप्ति नहीं होगी।

classmate
Date
Page

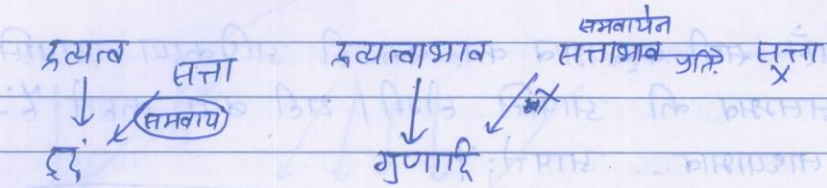


'साध्याभावव्य... स्यात्' ⇒ विवेचन प्रथम लक्षणवत् (पृ. 9 पर उत्तरपक्ष की तरह)।

'न च... वक्ष्यमाणत्वात्' ⇒ विवेचन प्रथम लक्षणवत् (पृ. 37 पर पूर्वपक्ष, पृ. 38 उत्तरपक्ष, पृ. 39-40 पर पूर्वपक्ष- उत्तरपक्ष)।

पूर्वपक्ष

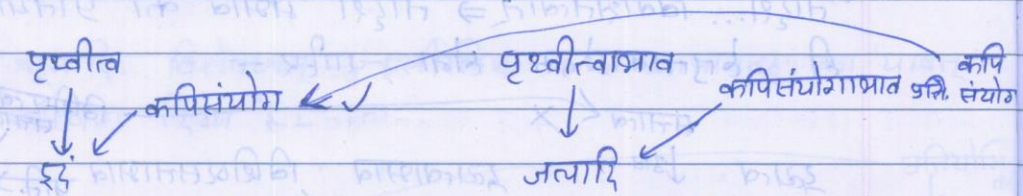


यहाँ हेतु कपिसंयोग ~~व्याप्यवृत्ति~~ व्याप्यवृत्ति है, अतः उसका अभाव कपिसंयोगाभाव केवलान्वयि है। वह सभी जगह रहता है। अतः साध्याभाव पृथ्वीत्वाभाव के सभी अधिकरण में ~~मिलेगा~~ कपिसंयोगाभाव मिलेगा। उसका प्रतियोगी ही हेतु होने से लक्षण घट गया और अतिव्याप्ति होगी।

उत्तरपक्ष 'न च... वाच्यम्' ⇒ ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि-
'तन्निष्ठपदेन... विवक्षितत्वात्' ⇒ 'निष्ठ' पद से निरवच्छिन्न वृत्ति वाला अभाव लेना ही विवक्षित है।
'इत्थं च... नातिव्याप्तिः' ⇒ इस प्रकार पृथ्वीत्वाभाव के अधिकरण ~~में~~ जत्वादि में निरवच्छिन्नवृत्ति वाला अभाव कपिसंयोगाभाव नहीं है किंतु घटत्वाभाव आदि ही है और उसकी

प्रतियोगिता हेतु में रहने से अतिव्याप्ति नहीं होगी।

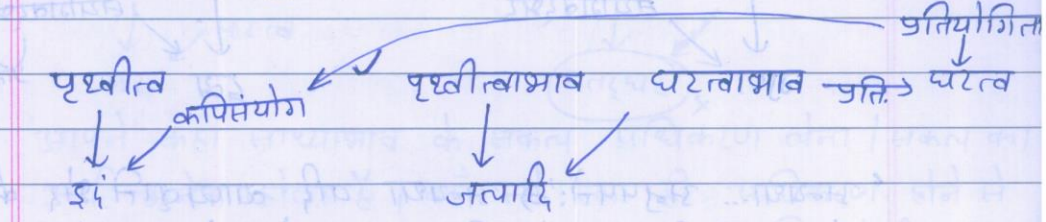


पूर्वपक्ष

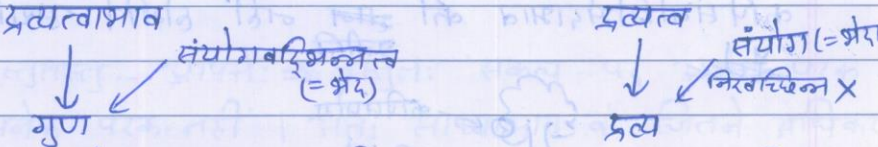


ऊपर कहे अनुसार ~~यदि~~ ऐसा नियम किया कि हेतु का अभाव निरवच्छिन्न वृत्ति वाला ~~न~~ होना। ऐसा नियम करने पर 'द्रव्यत्वाभाववान् संयोगवद्भिन्नत्वात्' इस अनुमान में अव्याप्ति होगी क्योंकि यहाँ हेत्वभाव होगा संयोगवद्भिन्नत्व का अभाव। संयोगवद्भिन्नत्व यानि संयोगवद्भेद। भेद का अभाव प्रतियोगितावच्छेदक रूप होता है अतः संयोगवद्भेद का अभाव संयोग रूप होगा। संयोग रूप हेत्वभाव का निरवच्छिन्न अधिकरण ही अप्रसिद्ध है। अतः अव्याप्ति होगी।

यह आपत्ति भेद को व्याप्यवृत्ति मानने के मत में आएगी

उत्तरपक्ष 'न चैवम् ... वाच्यम्' ⇒ ऐसा नहीं कहना चाहिए। क्योंकि 'अन्योन्याभावस्य ... व्याप्यवृत्तिः' ⇒ भेद की ~~न~~ व्याप्यवृत्तिता मानने के मत में भेद का अभाव प्रतियोगितावच्छेदक नहीं होता किंतु अतिरिक्त व्याप्यवृत्ति अभाव होता है। अतः लक्षण समन्वय हो जाएगा-

classmate
Date
Page

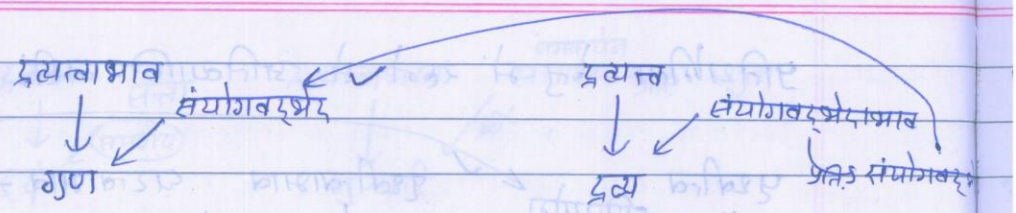


'अन्यथा... अनुपपत्तेः' ⇒ अन्यथा यदि व्याप्यवृत्ति भेद के अभाव को अतिरिक्त व्याप्यवृत्ति न मानो तो वृक्ष में मूलावच्छेदेन कपिसंयोगिभेदाभाव की ~~ज्ञान~~ प्रतीति नहीं होगी। अर्थात्

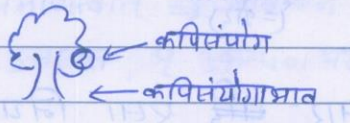


यहाँ एक ही वृक्ष में कपिसंयोग और कपिसंयोगाभाव की प्रतीति होती है। किंतु -

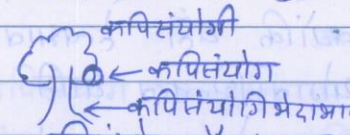


शाखावच्छेदेन कपिसंयोग है। अतः पूरा वृक्ष कपिसंयोगी है, वृक्ष में मूलावच्छेदेन भी कपिसंयोगिभेद नहीं है, ऐसी प्रतीति होती है। यदि कपिसंयोगिभेद/कपिसंयोगिभेदाभाव को व्याप्यवृत्ति न मानो तो ऐसी प्रतीति नहीं हो सकती। एक ही वृक्ष में शाखावच्छेदेन कपिसंयोगी और मूलावच्छेदेन कपिसंयोगिभेद मानना पड़ेगा। किंतु ऐसी प्रतीति न होने से कपिसंयोगिभेदाभाव को व्याप्यवृत्ति ही मानना पड़ेगा और वह पूरे वृक्ष में रहता है।

'इति... वृत्तिमत्त्वात्' ⇒ इस प्रकार संयोगवद्भिन्नत्वाभाव भी निरवच्छिन्नवृत्ति वाला होने से लक्षण समन्वय हो जाएगा।

पूर्वपक्ष एतद्घटत्वाभाव ↓ परत्व ↓ पट

एतद्घटत्व ↓ एतद्घट ×

आपने कहा साध्याभाव के सकल अधिकरण लेना। सकल का अर्थ अनेक होता है। यहाँ तो एक ही अधिकरण होने से अनेक अधिकरण अप्रसिद्ध हैं। अतः अव्याप्ति होगी।

उत्तरपक्ष 'वस्तुतस्तु... आपन्नेः' ⇒ वस्तुतः 'सकल' पद 'अशेष' परक है, अनेक परक नहीं। अतः साध्याभाव के जितने अधिकरण, सभी लेना है, एक भी शेष नहीं रहना चाहिए। चाहे एक हो तो एक या अनेक हो तो अनेक लेना। इससे एक व्यक्ति रूप विपक्ष वाले स्थल में भी उपर्युक्त रीति से अव्याप्ति नहीं होगी।

'तथा च... लक्षणार्थः' ⇒ इस प्रकार लक्षण का अर्थ यह होगा- निरुक्त निरवच्छिन्न साध्याभावाधिकरणता का व्यापक ~~जो अभाव~~ और हेतुतावच्छेदकसंबंधावच्छिन्न जो अभाव, उसका प्रतियोगितावच्छेदक हेतुतावच्छेदक होना चाहिए -

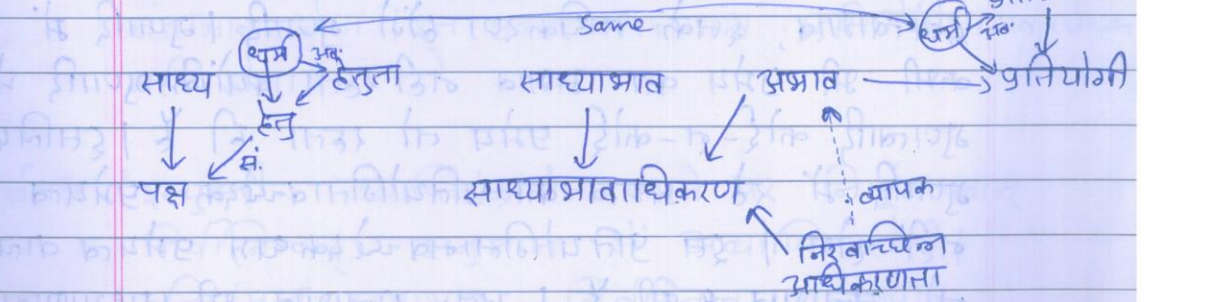


~~पूर्वपक्ष~~ इस लक्षण में ~~का~~ साध्याभावाधिकरणता का व्यापक ऐसा

अभाव लेना है। यहाँ व्यापक का अर्थ होता है — तद्वन्निष्ठाभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत् (तद्= व्याप्य) अर्थात् व्याप्य के अधिकरण में रहे अभाव की प्रतियोगिता का अवच्छेदक न हो, ऐसे धर्म वाला व्यापक होता है। eg. वह्नि व्यापक है, धूम व्याप्य है तो धूम के अधिकरण में रहे अभाव का वह्नि कभी भी प्रतियोगि नहीं बनेगा, अतः उस अभाव का प्रतियोगितावच्छेदक वह्नित्व नहीं होगा। इस प्रतियोगितानवच्छेदक धर्म वह्नित्व वाला वह्नि व्यापक है।

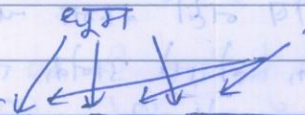


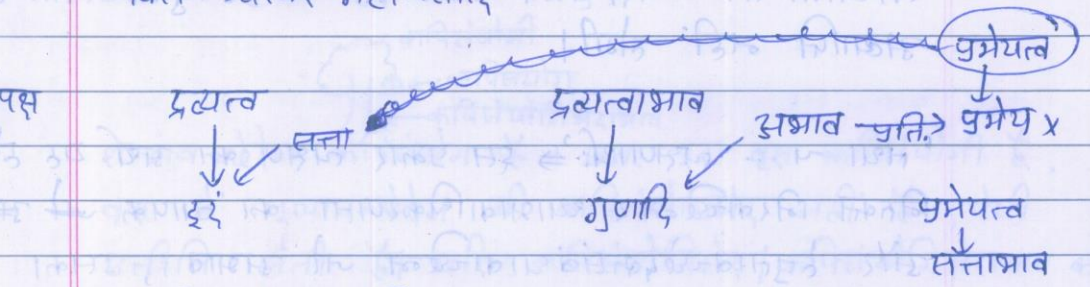


'सत्तादि... अतिव्याप्तिः' ⇒ ~~सत्ता~~ साध्य-द्रव्यत्व, साध्याभाव-द्रव्यत्वाभाव, इसके अधिकरण होंगे गुणादि। गुणादि में कभी भी प्रमेय का अभाव नहीं रहता क्योंकि गुणादि में गुणत्वादि कोई-न-कोई प्रमेय तो रहता ही है। इसलिए गुणादि में रहे अभाव का प्रतियोगितावच्छेदक प्रमेयत्व नहीं होगा। इस प्रतियोगितानवच्छेदकधर्म प्रमेयत्व वाला तो सत्ताभाव भी है। अतः सत्ताभाव भी साध्याभावाधिकरणता का व्यापक अभाव हो गया। ऐसा होने से

अतिव्याप्ति हुई। सत्ताभाव गुणादि में व्यापक नहीं है किंतु उसमें व्यापक का लक्षण चला गया।

~~उत्तरपक्ष~~ इस प्रकार सत्तादि सामान्य का अभाव भी प्रमेयत्वादि रूप से निरुक्त साध्याभावाधिकरणता का व्यापक है, अतः द्रव्यं सत्त्वात् इत्यादि में अतिव्याप्ति होगी।

उत्तरपक्ष व्यापकत्व = तद्वन्निष्ठाभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्व लेने पर आपत्ति हुई इसलिए

'तद्वन् ... ~~व्यापकत्वं~~ व्यापकत्वं' ⇒ व्यापकत्व का अर्थ तद्वन्निष्ठभेदप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वं कर देने से अतिव्याप्ति नहीं होगी अर्थात् अभाव की जगह भेद का प्रतियोगितानवच्छेदक धर्म वाला होना।

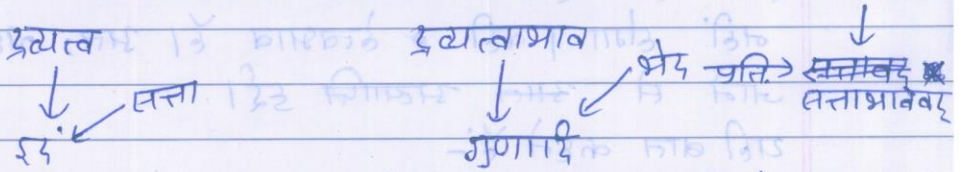


साध्याभाव के अधिकरण में सत्ताभाववद्भेद मिलेगा, उसका प्रतियोगी सत्ताभाववद् होगा और प्रतियोगितावच्छेदक सत्ताभाव होगा। इस प्रकार सत्ताभाव प्रतियोगितानवच्छेदक नहीं होगा।

पूर्वपक्ष 'इत्युक्तौ ... अव्याप्तिः' ⇒ ऐसा कहने पर 'निर्धूमत्ववान् निर्वह्नित्वात्' अनुमान में अव्याप्ति होगी।
निर्धूमत्व = धूमाभाव, निर्वह्नित्व = वह्न्यभाव
धूमाभाववान्, वह्न्यभावात् ये सत्स्थल है।

महानसीय वह्नि

धूमाभाव → वह्न्यभाव → जलह्रद

धूम → महानसीय वह्निसमूहाभाव → पर्वत

प्रति. → महानसीय वह्निसमूहाभाव → पर्वतीय वह्नि

धूम → पर्वतीय वह्निसमूहाभाव → महानस

प्रति. → पर्वतीय वह्निसमूह

इस प्रकार चालनी न्याय से हर ~~वह्निविशिष्ट~~ विशेष ~~क~~ प्रतियोगिता-वच्छेदक हो जाएगी, प्रतियोगितानवच्छेदक नहीं। सभी विशेष वह्नि में प्रतियोगितावच्छेदकत्व रहता है तो सामान्य वह्नि में भी प्रतियोगितावच्छेदकत्व रहेगा क्योंकि जैसे सभी विशेषाभाव होता है तो सामान्य का भी अभाव होता है, वैसे यह भी घटेगा।

इस तरह वह्नि सामान्य भी साध्याभावाधिकरणता का व्यापक नहीं होगा। वही ~~क~~ हेत्वभाव है। अतः लक्षण नहीं जाने से ~~अत~~ अव्याप्ति हुई।

यही बात कहते हैं-

'निर्धूमत्वा... अवच्छेदकत्वाद्'।

उत्तरपक्ष 'न च... इति वाच्यम्' ⇒ ऐसा नहीं कहना चाहिए।